सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा ।
पहन मौत का मुकट, विश्व-हित मानव को जीना होगा ॥

भाग २] मथुरा, २० अगस्त सन् १९४१ [अंक ८

प्रभु से

(श्री 'विकल' कविरत्न)

देखा ही नहीं है कभी, कैसा तेरा रूपरंग,
जो कुछ सुना है वैसा, चित्र खींच लूंगा मैं।
विकल विभूती भल, जग में तलाश करूं,
मिल जाय उर से लगाय भींच लूंगा मैं॥
आशा की सुबेल कभी, जीतेजी न सूखने दूं,
नयनों से नीर नित, बहा सींच लूंगा मैं।
देखना निकल कहाँ, जायगा तू चितचोर,
आँख में बसा है जब, आँख मींच लूंगा मैं॥

(२)

हो गया निराश आश, रही न किसी की अब,
भूल कर भी न जग, और मैं निहारूंगा।
आओ हृदयेश बैठ जाओ हृदयासन पै,
अश्रुविंदुओं से पद-पद्म मैं पखारूंगा॥
पत्र पुष्प भी तो नहीं, पूजन के रहे नाथ,
भव्य भावनाओं की सुमाल गल डारूंगा।
निश दिन जलती जो, विकल वियोग ज्वाल,
उससे तुम्हारी देव, आरती उतारूंगा॥

सुधा बीज बोने से पहले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौत का मुकट, विश्व-हित मानव को जीना होगा॥

मथुरा, २० अगस्त सन् १९४१

आओ, गंगा में जौ बोवें

मनुष्य केवल आहार निद्रा और मैथुन के लिये ही जीवित नहीं है। यदि धन और भोगों की ही आवश्यकता उसके लिए पर्याप्त होती तो वह बहुत नीची श्रेणी का प्राणी कहलाता। जिन महान् प्रयत्नों और ईश्वर की महती अनुकम्पा के कारण यह सुर-दुर्लभ मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है उनका तात्विक कारण यह है कि वह अपने उत्कर्ष के लिए इस अलभ्य अवसर का अच्छे से अच्छा उपयोग करके अपना भावी पथ निर्माण करे।

जीवन एक यात्रा है। हम एक महान् लक्ष की ओर बढ़ने के लिए जीवन धारण करते हैं और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बहुत वर्षों तक जीते हैं। कुछेक जीवों को छोड़ कर सृष्टि के शेष समस्त प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य को इसलिए ईश्वर अधिक समय तक जीने देता है कि वह अपनी उन्नति के लिए इतने दिनों में पर्याप्त प्रयत्न करले। किन्तु हाय! हम कितने अभागे हैं जो कुछ कांचन जैसे साधारण साधनों में ही पूरी तरह उलझ जाते हैं इस बात को बिलकुल ही भुला देते हैं कि हम कौन हैं? और किस कारण इस जीवन को कितनी कठिनाइयों के साथ प्राप्त करके उस को धारण किये हुए हैं।

भव सागर के अज्ञानांधकार में मनुष्य बिलकुल ही अपने मार्ग को पहचानने में असमर्थ न होजाय इसलिए प्रभु ने उसे एक दीपक देकर भेजा है जिसका नाम है ज्ञान! विवेक की सहायता से मनुष्य यदि जरा देखना चाहे तो उसे दिखाई पड़ता है कि उसका मार्ग क्या है और उसे क्या करना चाहिए? संसार के महा पुरुष चिल्ला चिल्ला कर हमें सचेत करते हैं कि-मनुष्यो, अन्धकार की ओर नहीं प्रकाश की ओर चलो—"तमसोमा ज्योतिर्गमय" अज्ञान में मत भटको, ज्ञान का आश्रय पकड़ो। इसी से तुम्हारा कल्याण होगा। जब मनके ऊपर कुविचारों और माया मोह का पर्दा पड़ा होता है तब भी विवेक बुद्धि भीतर पुकार कर कहती है—'आत्मन्! तेरा यह क्षणिक जीवन नष्ट हुआ ही चाहता है, जो कुछ करना हो जल्दी करलो, फिर ऐसा अवसर हाथ न आवेगा। यदि पेट ही भरना था तो अन्य योनियाँ भी प्राप्त थीं, प्रभु की महान् अनुकम्पा से प्राप्त हुए इस जीवन को यों ही नष्ट मत होने दो, कुछ करो, अन्यथा मृत्यु मुख फाड़े सामने ही खड़ी है, न जाने दूसरा दिन आवे या नहीं।" अन्दर ही अन्दर यह आवाज हर मनुष्य के उठती है किन्तु कितने हैं जो उस आवाज को साफ कानों से सुनते हैं या सुन कर उस पर ध्यान देते हैं?

कई मनुष्य अपने भविष्य का चिन्तन भी करते हैं और उसकेलिए जैसे तैसे थोड़ा प्रयत्न भी करते हैं परन्तु वे अपने कर्तव्य को ठीक सुनने में गड़-बड़ा जाते हैं और चक्करदार रास्तों में उलझ कर अपने बीज को ऐसी पथरीली भूमि पर बोते हैं जहां वास्तविक फल प्राप्त नहीं होता। तत्व-ज्ञानी योगी इस बात की खोज करते रहते हैं कि मनुष्य का सर्व श्रेष्ठ कर्तव्य क्या है? अपनी अनेक शंकाओं और असंख्य तर्कों के साथ इस देश के तत्वदर्शियों और जीवन मुक्त महात्माओं ने अनेक अनुसंधानों के पश्चात् यही निश्चित कर पाया है कि

मनुष्य का सर्व श्रेष्ठ कर्तव्य आत्म कल्याण करना है। आत्म कल्याण का मार्ग यह है कि बुरे विचार और कर्मों को त्यागता हुआ हृदय को पवित्र बनावे इस पवित्र हृदय में ही परमात्मा का दर्शन होताहै। जैसे जैसे अपना आत्मा निर्दोष होता जाता है वैसे ही वैसे उसमें भगवान के दिव्य स्वरूप की झाँकी स्पष्ट रूप से होती जाती है। कोई मनुष्य बुरे विचारों को धारण किये हुए आत्मोन्नति करना चाहे तो यह असंभव है। यह तो हुई आत्म साधना की बात।

आत्म साधना के अतिरिक्त शरीर धर्म और बच रहता है। यह विभाजन हम समझने की सरलता की दृष्टि से कर रहे हैं, अन्यथा शारीरिक कर्मों और आत्म साधना के दो भाग नहीं किये जा सकते। जैसे भोजन से रक्त और रक्त से वीर्य बनता है, वैसे ही शारीरिक कर्मों से विचार और विचारों से आध्यात्मिक स्थिति उत्पन्न होती है। यदि कोई यों भी कहना चाहे कि शुभ कर्मों से आत्म कल्याण होता है, तो भी एक ही बात है। मन और विचारों का पवित्र करना ही केन्द्र विन्दु है, इसी में सफलता प्राप्त करने से मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य पूरा हो सकता है। यही ताली है। शास्त्र कहता है—मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

शरीर से हमें ऐसे शुभ कर्म करने में सदैव प्रयत्न शील रहना चाहिये जिनसे हृदय और विचारों में पवित्रता उत्पन्न हो। ऐसे कार्यों में 'देना' सर्व श्रेष्ठ है। इससे उत्तम कर्म विधान आज तक किसी ने खोज नहीं निकाला। यह प्रत्यक्ष देखिए कि अपनी वस्तु किसी को दे देने पर हम हलके हो जाते हैं, और यदि दूसरों से लें तो लद जाते हैं-भारी हो जाते हैं। निखिल विश्व में वही कर्म पुण्य की श्रेणी में रखे गये हैं, जिनमें लेना कम और देना अधिक होता है। उपनिषद की कथा है कि जब देव दानव मनुष्य, अपने लिए श्रेष्ठ कर्म पूछने ब्रह्मा के पास गये तो ब्रह्मा ने उन्हें 'द' शब्द का उपदेश किया। सचमुच 'देना' प्रभु की सर्व श्रेष्ठ पूजा है। उनकी सृष्टि को यदि हम निरंतर वह सब देते रहें जो हमारे पास है, तो निश्चय ही हम मनुष्य जीवन को सफल बनाने योग्य कर्तव्य करते हैं।

क्या दें? जो निर्धन है, वे कहते हैं हमारे पास देने को क्या है? जिनके पास धन है, वे उसे अपनी शेखी शान के कामों में खर्च करके दान का संतोष कर लेते हैं। यथार्थ में देने योग्य सब से उत्तम वस्तु है "ज्ञान"। मनुष्यों को इसी वस्तु की आवश्यकता है। ज्ञान के अभाव में ही सारा संसार नारकीय यातनाओं में झुलस रहा है। संपत्ति और बुद्धि इस युग में मनुष्यों के खून की कमाई है पर इससे लाभ कुछ नहीं हुआ जितने जितने दाँत पैने हुए उतनी ही काट खाने को शक्ति बढ़ गई। आज एक देश दूसरे देश को, एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य को काट खाने के लिए दौड़ रहा है। इस लिये संपत्ति और बुद्धि का दान करने से काम न चलेगा। सदावर्त खोल देना अच्छा है, पर दूसरे ही दिन वह मनुष्य मल माग से उसे निकाल कर फिर वैसा ही भूखा बन जावेगा। प्याऊ खोल देने से पानी की प्यास केवल कुछ घंटे के लिए बुझेगी। इन दोनों का हम विरोध नहीं कर रहे हैं, यह भी कर्तव्य हैं परन्तु अति उत्तम दान "ज्ञान दान" है। इसके लिये धनी या निर्धन का अन्तर कुछ बाधा नहीं डालता यदि हम दूसरों को सद् विचार बतावें, उनको जीवन का वास्तविक तत्व सिखलायें, कुच काँचन की निस्सारता उनके सामने खोल कर रखें और समझावें कि प्रेम एवं सेवा ही जीवन का सार है तो इससे संसार का बड़ा उपकार हो सकता है। निरन्तर प्रयत्न करने पर यदि कोई किसी दूसरे एक भी मनुष्य का जीवन सुधार दे तो समझना चाहिए कि उसने एक बेल बोदी जिसके मीठे फल और बीज फिर इधर उधर फैलेंगे। संसार में सद् ज्ञान का प्रसार हुए बिना कलह, पाप

दुराचार, हत्या, चोरी, अशान्ति आदि का अन्त नहीं हो सकता चाहे कितने ही भौतिक प्रयत्न किये जाँय। जब तक मनुष्य के मन में शैतान बैठा रहेगा तब तक अन्य प्रकार के दान उसका कुछ भी भला न कर सकेंगे। इस लिए कोई विवेक-शील महानुभाव यदि ऐसा दान करते हैं, जिससे संसार की सच्ची सेवा हो, दूसरों का सच्चा उपकार हो, और उसके बदले में उसे सच्ची आत्म शान्ति मिले तो अब तक के समस्त तत्वज्ञों के इस वचन को हम उद्घोषित करते हैं– "ज्ञान दान दीजिये ! संसार में सद् ज्ञान का प्रचार कीजिये।" इस दान का इतना फल तो निश्चय है कि इसका जन्म मनुष्य योनि में और किसी विद्वान परिवार में ही होता है, क्योंकि ज्ञान के दान का फल ज्ञान ही है। और यह फल मनुष्य योनि के अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञान योनि नहीं है। इसलिये ज्ञान दान करने वाला कदापि नीच योनि में जन्म नहीं लेता।

सद् ज्ञान का प्रचार करने के लिए यह आवश्यक नहीं है, कि हर मनुष्य बड़ा भारी विद्वान, वक्ता या लेखक ही हो। संसार में अब तक अनेक महापुरुष हो चुके हैं, जिन्होंने युगयुगान्तरों की तपस्या से जो आत्म शक्ति प्राप्त की थी उनके फल स्वरूप उत्पन्न हुए ज्ञान को जनता के समक्ष रखा था इस ज्ञान को–उनके वचनों को उनकी पुस्तकों को, उनके मन्तव्यों को हम जन साधारण में फैलाते रहकर एक श्रेष्ठ कर्तव्य करते रह सकते हैं। प्राचीन ऋषियों से लेकर अवतारों और महात्माओं ने जो उपदेश किये हैं, उनको भी हम जनता तक पहुँचाते रहें तो यह बीज कहीं न कहीं जमेगा ही। हिन्दू धर्म गंगा जी में जौ बोने का उपदेश करता है, क्योंकि वह जौ पानी की लहरों के सहारे कहीं न कहीं उपजेंगे ही और जहाँ उपजेंगे वहाँ किसी न किसी का भला होगा ही। उतावले लड़कों की तरह यह न देखना चाहिए कि कल जिसे उपदेश दिया गया था आज महात्मा बना या नहीं ? विश्वास रखिये यदि आपने सच्चे हृदय से सन्देश पहुँचाया है, तो उन महात्माओं की दिव्य वाणी मनुष्य के हृदय में संस्कार जमावे गी ही और उसका कभी न कभी फल मिलेगा ही। अपने विचारों एवं वचनों से अथवा महापुरुषों की दिव्य वाणियों द्वारा संसार ने ज्ञान मार्ग का प्रचार करना यह एक ऐसा कर्म है, जो विचारों को पवित्र करता है दूसरा जन्म विद्वान परिवार में प्रदान करता है, आत्म कल्याण का मार्ग खोलता है, और एक दिन प्रभु के साक्षात् दर्शन करा देता है। यह सरल और सत्य धर्म इस युग की आवश्यकता को देखते हुए बहुत उत्तम कहा जा सकता है।

पौरुष का गौरव

यह नहीं कहा गया है कि विधाता नादान दुर्बलों को अपनी गोद में खिलाता है। वह हमें बुद्धि देता है, जिसका अर्थ है कि हम अपने ही ऊपर निर्भर रहें। उसने हमें यह आदेश दिया है कि हम रोते हुए जाकर उसका दरवाज़ा न खट-खटायें। उसने अपने आपको हमारे क्षेत्र से अलग रक्खा है और वह निरन्तर चिंताशील माता के समान बार-बार प्रकट नहीं होता। इसके लिये उसे मैं वन्दन करता हूँ। मुझे पूरी-पूरी जिम्मेवारी का अधिकार बख्श कर उसने मेरे पौरुष को सम्मानित किया है। वह कायरों को अपने हाथ का सहारा देकर नहीं चलाता, किन्तु उन्हें मृत्यु के अनुभव में से भी अकेले चलाने को मजबूर करता है ताकि वे निर्भयता से जी सकें।

माडर्न रिव्यू,
जनवरी १९४० ई०

—कवीन्द्र रवीन्द्र

धर्म का स्वरूप

(महामना पं० मदन मोहन मालवीय)

दूसरे के प्रति हमको वह काम नहीं करना चाहिये जिसको यदि दूसरा हमारे प्रति करे तो हमको बुरा मालूम हो या दुःख हो। संक्षेप में यही धर्म है, इसके अतिरिक्त दूसरे सब धर्म किसी बात की कामना से किये जाते हैं।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, धर्म जिनका सब समय में पालन करना सब प्राणियों के लिये विहित है और जिनके उल्लङ्घन करने से आदमी नीचे गिरता है, इन्हीं सिद्धान्तों पर स्थित हैं। इन्हीं सिद्धान्तों पर वेदों में गृहस्थों के लिये पञ्च-महायज्ञ का विधान किया गया है कि जो भूल से भी किसी निर्दोष जीव की हिंसा हो जाय तो हम उसका प्रायश्चित करें। जो हिंसक जीव हैं, जो हमारा या किसी दूसरे निर्दोष प्राणी का प्राणाघात करना चाहते हैं या उनका धन हरना या धर्म बिगाड़ना चाहते हैं, जो हम पर या हमारे देश पर, हमारे गाँव पर आक्रमण करते हैं या जो आग लगाते हैं या किसी को विष देते हैं—ऐसे लोग आततायी कहे जाते हैं। अपने या अपने किसी भाई या बहिन के प्राण, धन, धर्म, मान की रक्षा के लिये ऐसे आततायी पुरुषों या जीवों का आवश्यकता के अनुसार आत्मरक्षा के सिद्धान्त पर बध करना धर्म है। निरपराधी अहिंसक जीवों की हिंसा करना अधर्म है।

इसी सिद्धान्त पर वेद के समय से हिन्दू लोग सारी सृष्टि के निर्दोष जीवों के साथ सहानुभूति करते आये हैं। गौ को हिन्दू लोकमाता कहते हैं, क्योंकि वह मनुष्य-जाति को दूध पिलाती है और सब प्रकार से उनका उपकार करती है। इसलिये उसकी रक्षा करना तो मनुष्यमात्र का विशेष कर्त्तव्य है किन्तु किसी भी निर्दोष या निरपराध प्राणी को मारना, किसी का धन या प्राण हरना, किसी के साथ अत्याचार करना, किसी को झूठ से ठगना, ऊपर लिखे धर्म के परम सिद्धान्त के अनुसार अकार्य अर्थात् न करने की बातें हैं और अपने समान सुख-दुःख का अनुभव करने वाले जीवधारियों की सेवा करना, उनका उपकार करना, यह त्रिकाल में सार्वलौकिक सत्य धर्म है।

मेरी यह प्रार्थना है कि ब्रह्मज्योति की सहायता से सब धर्मशील जन अपने ज्ञान को विशुद्ध और अविचल कर और अपने उत्साह को नूतन और प्रबल कर सारे संसार में इस धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करें और समस्त जगत् को यह विश्वास करा दें कि सब का ईश्वर एक ही है और वह अंशरूप से न केवल सब मनुष्यों में किन्तु समस्त जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष और विटप सब में समान रूप से अवस्थित है और उसकी सब से उत्तम पूजा यही है कि हम प्राणीमात्र में ईश्वर का भाव देखें, सब से मित्रता का भाव रक्खें और और सब का हित चाहें। सर्वजनीन प्रेम से इस सत्य ज्ञान के प्रचार से ईश्वरीय शक्ति का संगठन और विस्तार करें। जगत् से अज्ञान को दूर करें, अन्याय और अत्याचार को रोकें और सत्य, न्याय और दया का प्रचार कर मनुष्यों में परस्पर प्रीति, सुख और शान्ति बढ़ावें। —ईश्वर

× × × ×

विश्वास करो—कि अधर्मी जीवन बिना मतलब का होता है। बिना सिद्धान्त का जीवन बिना पतवार के जहाज के सदृश है। जैसे कि यह जहाज इतस्ततः फिरता रहेगा। ठीक स्थान पर नहीं पहुँच पाता। ऐसे ही अधर्मी जीवन भी संसार में मारा मारा फिर कर अपने उद्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँचता है।

कथा—

'ब्रह्म तेजो बलं बलम्'

विश्वामित्र तब तक एक क्षत्रिय राजा थे। उनका प्रचंड प्रताप दूर-दूर तक प्रख्यात था। शत्रुओं की हिम्मत उनके सम्मुख पड़ने की न होती थी। दुष्ट उनके दर्प से थर-थर काँपा करते थे। बल में उनके समान दूसरा उस समय न था।

एक दिन राजा विश्वामित्र शिकार खेलते-खेलते वशिष्ठ मुनि के आश्रम में जा पहुँचे। मुनि ने राजा का समुचित आतिथ्य सत्कार किया और अपने आश्रम की सारी व्यवस्था उन्हें दिखाई। राजा ने नन्दिनी नामक उस गौ को भी देखा, जिसकी प्रशंसा दूर-दूर देशों में हो रही थी। यह गौ प्रचुर मात्रा में और अमृत के समान गुण-वाली दूध तो देती ही थी, साथ ही उसमें और भी दिव्य गुण थे, जिस स्थान पर वह रहती, वहाँ देवता निवास करते और किसी बात का घाटा न रहता। सुन्दरता में तो अद्वितीय ही थी।

राजा विश्वामित्र का मन इस गौ को लेने के लिए ललचाने लगा। उन्होंने अपनी इच्छा मुनि के सामने प्रकट की, पर उन्होंने मना कर दिया। राजा ने बहुत समझाया और बहुत से धन का लालच दिया पर वशिष्ठ उस गौ को देने के लिए किसी प्रकार तैयार न हुए। इस पर विश्वामित्र को बड़ा क्रोध आया। मेरी एक छोटी सी बात भी यह ब्राह्मण नहीं मानता। यह मेरी शक्ति को नहीं जानता और मेरा तिरस्कार करता है। इन्हीं विचारों से अहंकार और क्रोध उबल आया। रोष में उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने सिपाहियों को बुलाकर आज्ञा दी कि 'जबरदस्ती इस गौ को खोल कर ले चलो।' नौकर आज्ञा पालन करने लगे।

वशिष्ठ साधारण व्यक्ति न थे। उन्होंने कुटी से बाहर निकल कर निर्भयता की दृष्टि से सब की ओर देखा। 'अकारण मेरी गौ लेने का साहस किसमें है, वह आवे; जरा आगे तो आवे।' यद्यपि उनके पास अस्त्र-शस्त्र न थे, अहिंसक थे, तो भी उनका आत्मतेज प्रस्फुटित होरहा था। सत्य पर आरूढ़ और ईश्वर का दृढ़ विश्वासी पुरुष इतना आत्म तेज रखता है कि उसके सामने बड़े बड़ों को झुकना पड़ता है। घर के मालिक—एक बच्चे के खाँस देने मात्र से बलवान चोर के पाँव उखड़ जाते हैं। विश्वामित्र और उनके सिपाहियों की हिम्मतें पस्त होगईं। उन्हें लगा कि उनका सारा बल पराक्रम बिदा हो गया है।

विश्वामित्र विचार करने लगे। भौतिक वस्तुओं का बल मिथ्या है। तन, धन की शक्ति बहुत ही तुच्छ, अस्थिर और नश्वर है। सच्चा बल तो आत्म बल है। आत्म बल से आध्यात्मिक और पारलौकिक उन्नति तो होती ही है, साथ ही लौकिक शक्ति भी प्राप्त होती है। मैं इतना पराक्रमी राजा—जिसके दर्प को बड़े-बड़े शूर सामन्त सहन नहीं कर सकते। इस ब्राह्मण के संमुख हत-प्रभ होकर बैठा हूँ और मुझ से कुछ भी बन नहीं पड़ रहा है। निश्चय ही तनबल, धनबल की अपेक्षा आत्मबल अनेकों गुनी शक्ति रखता है।

उन्होंने निश्चय कर लिया कि भविष्य में वे सब ओर से मुँह मोड़ कर आत्म साधना करेंगे और ब्रह्म तेज को प्राप्त करेंगे। ब्रह्म तेज पर वे इतने मुग्ध हुए कि अनायास ही उनके मुँह से निकल पड़ा कि—'धिग् बलं, क्षत्रिय बलं, ब्रह्म तेजो बलं बलम्।' क्षत्रिय बल तुच्छ है, बल तो ब्रह्म तेज ही है।

विश्वामित्र ने घोर तपस्या की और समया-नुसार ब्रह्म तेज को प्राप्त कर लिया।

× × × ×

आजकल हमारा आधार आनन्द मङ्गल है। इससे प्रतीत होता है कि हम लोग निर्बल होकर कायरता में गिर रहे हैं।

कथा—

पापों का अन्त क्यों नहीं होता ?

एक जिज्ञासु किसी तत्वज्ञानी पुरुष से पूछ रहा था कि—महाराज ! संसार से पापों का अन्त क्यों नहीं होता ? अब तक इतने महात्मा, साधु, अवतार, हो चुके हैं सबने इस दुनियाँ को भला बनाने का प्रयत्न किया, पर किसी के प्रयत्न का कुछ भी फल नहीं हुआ, संसार जैसे का तैसा पाप पूर्ण अब भी बना हुआ है। इसमें सदा ही बुराइयों की भरमार रहती है।

तत्व ज्ञानी ने जिज्ञासु को एक कथा सुनाई, उनने कहा—एक बार एक मनुष्य बहुत दीन दशा में निर्वाह कर रहा था। उससे सुना कि यदि किसी के वश में भूत हो जाय तो उसे मन चाही चीजें बात की बात में लाकर दे सकता है। उसने सोचा कि किसी प्रकार भूत को वश में कर पाऊँ तो मेरे सब अभाव मिट जायँगे। अब वह भूत को वश में करने की क्रिया मालूम करने के लिये जगह—जगह घूमने लगा।

एक दिन उसे दैवयोग से किसी ऐसे महानुभाव से भेंट हो गई जो भूत को वश में करने की विद्या जानते थे। उस ग़रीब आदमी के बहुत अनुनय विनय करने पर वह विधि उसने उसे बता दी। उसी प्रकार उसने अनुष्ठान किया और मरघट को जगा कर एक भूत को वश में कर लिया। जब वह वश में आगया तो भूत ने प्रकट होकर कहा-महानुभाव, अब मैं आप के वश में हूँ, मुझसे जो चाहें सो काम लीजिये, लेकिन मैं ठाली न बैठूँगा, जब ठाली रहूँगा तो आप पर ही पिल पड़ूंगा। ग़रीब आदमी ने कहा कि अच्छी बात है, बेकार न रहने दूंगा, मेरे पास बहुत काम है। जाइये, मेरे लिये एक महल बनाइये। भूत ने चन्द मिनटों में ही महल बना दिया। फिर उसने काम माँगा, तो उसने कहा—इस महल में बहुत साधन, ख़ज़ाना, सजावट का सामान, नौकर चाकर आदि सब चीज़ें लाकर कर दो। भूत ने पाँच मिनट के अन्दर राजमहलों की तरह सब चीज़ों से उसे सजा दिया और फिर काम माँगने के लिये सामने आ खड़ा हुआ। उसकी उतनी कार्य शक्ति देख कर मालिक बहुत घबराया और अपनी जान बचाने के लिये उन्हीं तान्त्रिक महानुभाव के पास भागा, जिन्होंने उसे भूत वश में करना सिखाया था। मालिक आगे-आगे भूत पीछे-पीछे। दोनों दौड़ते-दौड़ते उन्हीं सज्जन के यहाँ पहुँचे। उस ग़रीब आदमी ने सारा क़िस्सा कह सुनाया और उससे बचने का उपाय पूछा।

तान्त्रिक महोदय बुद्धिमान थे, उन्होंने भूत को एक कटी हुई कुत्ते की पूँछ दिखाई और कहा इसे सीधी करके रख दे। भूत उस पूछ को हाथों से पकड़ कर सीधी कर देता, किंतु जैसे ही उसे रखता कि वह फिर वैसी ही टेढ़ी हो जाती, भूत फिर सीधी करके रखता वह फिर टेढ़ी हो जाती, इस प्रकार पूँछ का बार बार टेढ़ा होना ग़रीब आदमी के लिये—भूत से छुटकारा पाने का एक अच्छा उपाय मिल गया।

× × × × ×

तत्व ज्ञानी महोदय ने इस कथा के आधार पर जिज्ञासु को समझाया कि संसार की बुराइयाँ, प्राणियों को अपने बचाव के लिये अच्छा मार्ग है। जिस प्रकार पत्थर का नाल उठाने का अभ्यास करने से अनेक मनुष्य पहलवान बन जाते हैं, किंतु मूर्ख लोग उससे ठोकरें खाते और पछताते हैं। संसार एक प्रकार की व्यायाम शाला है, इससे तरह—तरह की बुराइयों के मुद्गर, नाल आदि पड़े हुए हैं। इनको उठाने के अभ्यास में अनेक लोग उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कर जाते हैं, किंतु वह मुद्गर और पत्थर ज्यों के त्यों पड़े रहते हैं। मन एक प्रकार का भूत है, इसे टेढ़ी होने वाली पूँछ को सीधी करने में और बुराइयाँ दूर करने में लगाया जाय तो उसी में उलझा रहता है और आत्मा का अनिष्ट नहीं कर पाता। इसीलिये परमात्मा ने आत्मोद्धार का अभ्यास करने के लिये संसार में बुराइयाँ छोड़ रक्खी हैं और उनका अन्त नहीं होता।

कथा—

गुप्त साधना

एक मनुष्य ने सुन रखा था कि आध्यात्मिक जगत में कुछ ऐसे गुप्त मंत्र हैं जो यदि किसी को सिद्ध हो जावें तो उसे बहुत सिद्धियां मिल सकती हैं। मन्त्रों की अद्भुत शक्तियों के बारे में उसने बहुत कुछ सुन रक्खा था और बहुत कुछ देखा था. इसलिए उसे बड़ी प्रबल उत्कंठा थी कि किसी प्रकार कोई मन्त्र सिद्ध करलें, तो आराम से जिन्दगी बीते और गुणवान तथा यशस्वी बन जावें।

गुप्त मन्त्र की दीक्षा लेने के विचार से गुरुओं को तलाश करता हुआ, वह दूर दूर मारा फिरने लगा। एक दिन एक सुयोग्य गुरु का उसे पता चला और वह उनके पास जा पहुँचा। वह महानुभाव दीक्षा देने के लिये तैयार न होते थे. पर जब उस मनुष्य ने बहुत प्रार्थना की और चरणों पर गिरा तो उन महानुभाव ने उसे शिष्य बना लिया। कुछ दिन के उपरान्त उसे गुप्त मन्त्र बताने की तिथि नियत की गई। उस दिन उसे गायत्री मंत्र की दीक्षा देदी और आदेश कर दिया कि इस मन्त्र को गुप्त रखना, यह अलभ्य मन्त्र औरों को मालूम नहीं है, तू इसका निष्ठा पूर्वक जप करले तो बहुत सी सिद्धियां प्राप्त हो जावेंगी।

शिष्य उस मन्त्र का जप करने लगा। एक दिन वह नदी किनारे गया तो देखा कि कुछ लोग गायत्री मंत्र को जोर जोर से उच्चारण करके गारहे थे। शिष्य को सन्देह हुआ कि इसे तो और लोग भी जानते हैं, इसमें गुप्त बात क्या है। इसी सोच विचार में वह आगे नगर में गया तो दिखा कि कितनी ही दीवारों पर गायत्री मंत्र लिखा हुआ है। वह और आगे चला तो एक पुस्तक विक्रेता की दुकान पर गायत्री सम्बन्धी कई पुस्तकें देखीं, जिनमें वह मंत्र छपा हुआ था। अब उसका सन्देह दृढ़ होने लगा। वह सोचने लगा यह तो मामूली मंत्र है और सब पर प्रकट है। गुरूजी ने मुझे योंही बहका दिया है। भला इससे क्या लाभ हो सकता है ?

इन सन्देहों के साथ वह गुरूजी के पास पहुँचा और क्रोध पूर्वक उनसे कहने लगा कि आप ने व्यर्थ ही मुझे उलझा रखा है और एक मामूली मंत्र को गुप्त एवं रहस्य पूर्ण बताया है।

गुरू जी बड़े उदार और क्षमाशील थे। उतावले शिष्य को क्रोध पूर्वक वैसी ही उतावली का उत्तर देने की अपेक्षा उसे समझा कर सन्तोष करा देना ही उचित समझा। उन्होंने उस समय उससे कुछ न कहा और चुप हो गये। दूसरे दिन उन्होंने उस शिष्य को बुलाकर एक हीरा दिया और कहा इसे क्रमशः कुँजड़े, पंसारी, सुनार, महाजन और जौहरी के पास ले जाओ और वे जो इसका मूल्य बतावें उसे आकर मुझे बताओ। शिष्य गुरू जी की आज्ञानुसार चल दिया। पहले वह कुँजड़े के पास पहुँचा और उसे दिखाते हुए कहा इस वस्तु का क्या मूल्य दे सकते हो ? कुँजड़े ने उसे देखा और कहा-काँच की गोली है, पड़ी रहेगी, बच्चे खेलते रहेंगे, इसके बदले में पाव भर साग ले जाओ। इसके बाद वह उसे पंसारी के यहाँ ले गया। पंसारी ने देखा काँच चमकदार है, तोलने के लिए बाँट अच्छा रहेगा। उसने कहा भाई, इसके बदले में एक सेर नमक ले सकते हो। शिष्य फिर आगे बढ़ा और एक सुनार के पास पहुँचा। सुनार ने देखा कोई अच्छा पत्थर है। जेवरों में नग लगाने के लिए अच्छा रहेगा। उसने कहा—इसकी कीमत ५०) दे सकता हूँ। इसके बाद वह महाजन के पास पहुँचा। महाजन पहचान गया कि यह हीरा है पर यह न समझ सका किस जाति का है, तब भी उसने अपनी बुद्धि के अनुसार उसका मूल्य एक हज़ार रुपया लगा दिया। अन्त में शिष्य जब जौहरी के पास पहुँचा तो उसने दस हज़ार रुपया

ईश्वर का आस्तित्व

(महात्मा गाँधी)

जो आदमी स्वयं ही ईश्वर की उपस्थिति की परीक्षा करना चाहे वह जीवंत श्रद्धा से उसका अनुभव कर सकता है और चूंकि श्रद्धा और विश्वास बाहरी प्रमाणों से सिद्ध नहीं किया जा सकता, इसलिये, सब से सुरक्षित मार्ग है संसार के नैतिक शासन में विश्वास रखना और इसलिये नैतिक नियम-सत्य और प्रेम के नियम की सर्वोपरिता में श्रद्धा रखनी। जहाँ पर सत्य और प्रेम के विरुद्ध हर एक वस्तु को तुरत ही इन्कार कर देता हो, वहां पर श्रद्धा या विश्वास का सहारा ही सब से अधिक सुरक्षित है। मगर ईश्वर के अविश्वास की दलीलों का जवाब नहीं दिया जा सकता। मैं कबूल करता हूँ कि उन्हें इन पंक्तियों से विश्वास नहीं दिला सकता। श्रद्धा बुद्धि से परे है। मैं उन्हें इतनी ही सलाह दे सकता हूँ कि आप असंभव काम करने की कोशिश मत कीजिये। युक्तियों के जरिये मैं दुनियां में बुराइयों के अस्तित्व का कारण नहीं समझ सकता। यह करने की चाहना करना तो ईश्वर की ही बराबरी करनी है। इसलिये मैं बुराई को बुराई मान लेने की नम्रता रखता हूँ और ठीक इसी लिये मैं ईश्वर को बहुत ही सहनशील और धैर्यशाली कहता हूं कि वह संसार में बुराइयों को भी रहने देता है। मैं जानता हूँ कि उसमें कुछ बुराई नहीं है, और तो भी अगर बुराई होवे तो वह उसका सृष्टा है, मगर तो भी उससे अछूता रहता है। मैं यह भी जानता हूँ कि अगर मैं ठेठ मौत तक का खतरा झेल कर भी बुराइयों के विरुद्ध युद्ध नहीं करूँगा तो मैं परमात्मा को कभी नहीं जान सकूँगा। मेरी श्रद्धा का कवच तो मेरा अपना ही मर्यादित और नम्र अनुभव है। मैं जितना ही शुद्ध विकार-रहित बनने का प्रयत्न करता हूं मुझे परमात्मा उतना ही निकट जान पड़ता है। आज तो मेरी श्रद्धा महज़ नाम की ही है, मगर जिस दिन वह हिमालय पहाड़ के समान अटल हो जायगी, हिमालय की चोटियों पर के बर्फ़ के समान ही चमकीली और शुभ्र हो जायगी, उस दिन मुझमें और कितनी शक्ति होगी? तब तक मैं तर्क करनेवालों को यही कहूंगा कि आप भी न्यूमैन के समान परमात्मा का भजन कीजिये, जिससे अपने अनुभव से गाया था कि:—

चारों ओर फैले हुये अन्धकार में,

हे प्रेमल ज्योति मुझे रास्ता बता, मुझे रास्ता बता।

दाम लगाया। इन सब के उत्तरों को लेकर वह गुरू जी के पास पहुँचा और जिसने जो कीमत लगाई थी वह उन्हें कह सुनाई।

गुरू ने कहा—यही तुम्हारे सदेहों का उत्तर है। एक वस्तु को देखा तो सब ने, पर मूल्य अपनी बुद्धि के अनुसार आंका। मंत्र साधारण मालूम पड़ता है और उसे सब कोई जानते हैं, पर उसका असली मूल्य जान लेना सब के लिए संभव नहीं है। जो उसके गुप्त तत्व को जान लेता है, वह अपनी श्रद्धा के अनुसार लाभ उठा लेता है।

यथार्थ में मंत्रानुष्ठान और आध्यात्मिक क्रियाओं को स्थूल दृष्टि से देखा जाये, तो वे वैसी ही मामूली और तुच्छ प्रतीत होती हैं जैसी कि कुँजड़े को वह काँच की गोली प्रतीत हुई थी; किन्तु श्रद्धा और निष्ठा के द्वारा जिसने अपना मन जौहरी बना लिया है, उसके लिये वह साधनाऐं बड़ा महत्व रखती हैं और इच्छानुसार फल भी देती हैं। सारा महत्व श्रद्धा और विश्वास में है। विश्वास के साथ की गई एक छोटी सी क्रिया भी विचित्र फल दिखाती है; किन्तु अविश्वास और अश्रद्धा के साथ किया हुआ अश्वमेध भी निष्फल है। यही गुप्त साधनाओं का रहस्य है।

महान कार्यों का रहस्य

(श्री० स्वेड मार्टन)

थामस ऐडीसन से किसी ने पूछा—"महाशय आपने इतने आविष्कार किये हैं क्या आप रात दिन इन्हीं के लिये लगे रहते हैं? ऐडीसन ने कहा—'मेरे सब आविष्कार लगातार प्रयत्न करने के फल मात्र हैं। जो काम मुझे करना होता है उसके पीछे ही जान से पड़ जाता हूँ।" धीरे-धीरे चलने वाला घोड़ा, घुड़दौड़ की कोतल से ज्यादा लम्बा सफर कर लेता है।

बाइबिल का एक मंत्र है—"जो आपत्तियों का मुकाबिला करता है उसके लिये मैं अपने तख्त पर जगह देता हूँ।" जीवन संग्राम की सफलता, मित्रों की सहायता अथवा सुनहले अवसर की अपेक्षा निरंतर प्रयत्न करने पर अधिक निर्भर रहती है। सिडनी स्मिथ कहता है—"महापुरुषों का जीवन अत्यंत अविरल परिश्रम वाला होता है, उनकी जिन्दगी का पहला आधा भाग बड़े परिश्रम और विघ्नों के बीच होकर गुजरता है।" जिस समय संसार ऐश आराम में मस्त होता है तब वे कठोर परिश्रम में जुटे होते हैं।

एक चीनी विद्यार्थी जब बराबर फेल होता तो उसे बड़ी निराशा हुई और उसने पुस्तकों का बस्ता बाँध कर एक कोने में पटक दिया। एक दिन उसने देखा कि एक वृद्धा स्त्री सुई बनाने के लिये एक लोहे के टुकड़े को पत्थर पर घिस रही थी, उसका धैर्य देख कर विद्यार्थी ने अपना नवीन निश्चय किया और चीन के तीन प्रसिद्ध विद्वानों में उसकी गिनती हुई। कालिदास की कथा सब जानते हैं। विवाह के बाद जवानी में उनने पढ़ना आरम्भ किया और संस्कृत के प्रतिभाशाली विद्वान् हो गये। एक मंद बुद्धि विद्यार्थी अपनी असफलताओं पर ऊब कर कहीं चले जाने की सोचने लगा। वह एक कुए के पास जा निकला और देखा कि रस्सी की रगड़ से पत्थर घिस गया है। उसने सोचा कि जब रस्सी से पत्थर घिस सकता है तो क्या उद्योग से मेरी मंद बुद्धि नहीं घिस सकती। उसने उत्साह पूर्वक अध्ययन आरम्भ किया और अंततः एक बड़ा विद्वान कहलाया।

शेरीडन ने जब पार्लमेंट में पहला भाषण दिया तो लोगों ने उसका मज़ाक उड़ाया था; एक सज्जन ने तो यहाँ तक कह दिया कि महोदय! यह कार्य आपकी सामर्थ्य से बाहर है। शेरीडन कुछ देर चुप रहे फिर उन्होंने कटाक्ष करने वाले से कहा—आप शीघ्र ही देखेंगे कि यह कार्य मेरी सामर्थ्य के भीतर है। कुछ दिनों में ही उन्होंने भाषण देने की अद्भुत योग्यता प्राप्त करली। उनकी एक वक्तृता को सुन कर विद्वान् फाक्स ने कहा—ऐसा भाषण आज तक इस हाउस आफ कामर्स में नहीं हुआ। कारलाइल कहता है—'हर एक अच्छा काम पहले असम्भव प्रतीत होता है।' जैरमी कोलयर का कहना है कि—'विश्वास के साथ आगे बढ़ते रहने से कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं।' महाशय टरनर ने अपनी सफलताओं का रहस्य बताते हुए कहा था—सफलता की कुञ्जी निरंतर कठिन परिश्रम करने की आदत डाल लेना है। रेनाल्ड कहते हैं—'यदि तुम सफल बनना चाहते हो तो आवश्यक है कि अपने ध्येय में तन्मय हो जाओ, सारी शक्तियाँ उसमें लगा दो और सोते समय तक में उसी का विचार करो।

उचित धैर्य और निरंतर के अध्यवसाय से बड़े बड़े कठिन काम पूरे होते हैं। विपरीत परिस्थितियों का विरोध करने से नवीन शक्ति उत्पन्न होती है। एक बाधा को दूर करने पर उससे बड़ी दूसरी बाधाओं को हटा देने की योग्यता प्राप्त हो जाती है। इतिहास कार गिबिन बीस वर्ष तक एक पुस्तक को लिखने में लगा रहा तब कहीं उसे पूरी कर सका। इंग्रेजी का एक बड़ा कोष तैयार करने में वेब्स्टर २६ वर्ष तक जुटा रहा। जार्जबेंक्राफ्ट ने प्राचीन राष्ट्रों के वंश परम्परा पर एक ग्रन्थ लिखा था। वह लिखता, परंतु लिखने के बाद वह अधूरा मालूम पड़ता। इस प्रकार उसने पन्द्रह वार उस पुस्तक

कथा—

सत्संग।

(श्री आनन्दकुमार चतुर्वेदी 'कुमार' छिबरामऊ)

किसी जंगल में एक साधु ने दो तोते पाल रक्खे थे, जिन को नित्य वेद मन्त्रों का उच्चारण करना सिखाते थे। थोड़े ही समय में दोनों तोते भली भाँति उन मन्त्रों को पढ़ने लगे और नित्य प्रातःकाल साधु जी की भाँति उठ कर भजन इत्यादि करते थे।

एक दिन उस मार्ग से एक कसाई निकला। इन तोतों के विषय में पहले से ही वह सब बातें सुन चुका था, चाहा कि इन तोतों में से एक भी उसे मिल जाय तो क्या ही अच्छा हो। निदान इसी हेतु वह साधु जी की कुटी पर गया और हाथ जोड़ कर विनती की कि महाराज, एक बात कहना चाहता हूँ, यदि आज्ञा हो तो निवेदन करूँ, साधु जी ने कहा कि कहो क्या कहना है?

को लिखा तब कहीं वह पूरी हुई। इस कार्य में उसे २६ वर्ष लगाने पड़े। टिटन ने अपनी एक पुस्तक सात वर्ष में तैयार की। रेलगाड़ी बनाने वाला स्टीफनसन रेलगाड़ी की अपूर्णताओं को दूर करने में पन्द्रह साल लगाये तब कहीं वह कुछ काम लायक हुई। भाप से चलने वाले इञ्जन को रोज बनाने बिगाड़ने में वाटने अपने २० वर्ष लगा कर थोड़ी सी सफलता पाई थी। कोलम्बस ने अमेरिका को तलाश करने में अपने को मृत्यु के मुख में ही डाल दिया था।

एक विद्वान् कहता है—असफलता का कारण यह है कि लोग बार-बार अपने इरादों को बदलते हैं अपने निर्धारित लक्ष में दिलचस्पी कम कर देते हैं। बुलकर का मत है—विजेता का साहस धैर्य है। इस गुण में ऐसी दैवी शक्ति है कि दुर्भाग्य को सौभाग्य में पलट सकता है। बर्क ने कहा है—कभी निराश मत होओ, यदि कभी निराशा का सामना करना पड़े तो भी अपना काम बंद मत करो।

कसाई ने तब कहा कि महाराज ये तोते हम को बहुत प्रिय मालूम होते हैं, इसलिये इन में से कृपा करके एक मुझको दे दीजिये। साधु जी ने उत्तर दिया कि मैंने इनको बड़े लाड़ से पाला था, परन्तु तेरी इच्छा अधिक देख कर मैं तुझको एक दे रहा हूँ एक बात का ध्यान रखना कि इसको कोई कष्ट न हो।"

कुछ समय पश्चात् उस देश के राजा ने सारे प्रांत में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो साधु सत्संग का अर्थ न बतलावेगा जेल जाना होगा, परन्तु उत्तर प्रत्येक साधु को देना जरूरी है। अब राजा प्रत्येक साधु की खोज कराता और अपना प्रश्न करता, परन्तु सभी असफल रहने के कारण क़ैद कर लिये जाते।

कुछ दिन पश्चात राजा के सिपाही दैवयोग उस साधु के आश्रम में पहुँचे और सत्संग के अर्थ पूछे साधु ने नम्रता पूर्वक कहा कि मैं इस प्रश्न का उत्तर कल दूंगा। परन्तु सिपाहियों ने आग्रह तथा विनती से उनको राज दर्बार चलने को कहा, साधु ने तब अपना तोता उन सिपाहियों को दिया और बोले कि इस तोते को राजा साहब को देना और मेरा एक तोता जो इसी का भाई है, अमुक कसाई के यहाँ से माँग लेना। राजा साहब इन दोनों को अपने ही पास रक्खें और रात में एकान्त में इनकी बातें सुने मैं कल १० बजे राज दरबार में पहुँचूंगा। निदान ऐसा ही किया गया।

राजा साहब ने अपने पास शयनागार में दोनों तोतों को टाँग लिया और उनकी बातों को सुनने की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करने लगा। रात भर कोई तोता नहीं बोला, परन्तु प्रातः ४ बजते ही साधु का तोता जागा और सदैव की भाँति यथा विधि मन्त्रों का उच्चारण करने लगा। राजा जी यह देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और मन ही मन उसकी प्रशंसा करने लगे। आठ बजने पर साधु वाला तोता मौन रहा, परन्तु कसाई वाले तोते ने बोलना शुरू किया कि नौकर जल्दी जाओ, स्टेशन से खाल की पार्सल ले आओ, यह बकरा लाओ, उसे मारो, गोश्त

इतने आना सेर इत्यादि । राजा इसके वाक्यों को सुन कर अत्यन्त क्रोधित हुये और नौकरों को आज्ञा दी इसको मार डाला जाय, परन्तु इतने में ही साधु वाला तोता बोला कि- हे राजन् ! इसमें इसका कोई दोष नहीं है, यह सारा परणाम इसकी संगति का है ।

पहले मैं और यह जब साथ २ रहते थे तो मेरे ही समान यह वेद मन्त्रों का उच्चारण करता था. परन्तु जब से यह कसाई के यहाँ गया तभी से इस की यह आदत पड़ गई है, क्योंकि कसाई के यहाँ सिवाय मारो काटो के दूसरी बात नहीं, और साधुजी का सत्संग होने के कारण मुझमें उनकी बातों तथा आदतों का प्रभाव पड़ा है। मनुष्य जीवन का सत्संग से पर्याप्त सम्बन्ध है, जैसी मनुष्य की संगति होगी, वैसाही उसका भविष्य भी बन जावेगा । सत्संग की महिमा तथा उदाहरण तो बहुत से हैं, परन्तु नीचे के दो उदाहरण पाठकों के लाभार्थ दिये जाते हैं, यदि एक मनुष्य कितने ही स्वच्छ वस्त्र क्यों न पहने यदि वह किसी लोहार की दूकान पर जायगा तो उसके वस्त्र कुछ न कुछ काले अवश्य पड़ जाँयगे इसी प्रकार गुलाब के वृक्ष के नीचे पड़े रहने वाले मिट्टी के डेले में गुलाब के वृक्ष के फूलों की सुगन्धि स्वतः आ ही जाती है। यह है सत्संग की महिमा तथा उसका फल । स्वामी एकारसानन्द जी ने सच कहा है कि पुस्तक अध्ययन करना वैसा ही है, जैसे पानी के ऊपर जमी हुई काई, परन्तु सत्संग का अध्ययन करना गगा जी के निर्मल तथा पवित्र जल के समान है ।

———

लोगों की निन्दा स्तुति की तुम्हें जितनी ही अधिक चिंता होगी उतनी कि तुम अपनी आत्मा का चिंतन कम करोगे ।

× × × ×

जन्म कोलाहल करता आता है, मृत्यु दबे पावों आती है ।

× × × ×

धर्म से ही उद्धार होगा

(योगी अरविन्द घोष)

धर्म द्वारा ही भारत की भावी सन्तान गौरव प्राप्त करेगी । योग ही धर्म प्राप्ति की मुख्य प्रणाली है। योग सिद्धि व्यक्ति की शक्ति अपने को गुणान्वित करके आत्म परिधि विस्तृत करेगी । योग सिद्ध व्यक्ति का व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य समष्टि बोध को तोड़ मरोड़ डालेगा । बहुत से बाजों के स्वरों के मिलने से जिस प्रकार एक तान की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार बहुत से व्यक्तियों की ऐक्य स्थापना में सुसामञ्जस्य पूर्ण नवीन राज्य तैयार होगा। वह राज्य किसी और का नहीं होगा। बल्कि आत्मा की ऐक्य मूर्तिका-देव समाज का होगा ।

आत्मा को बिना जाने या बिना पाये, जो नवीन समाज गठन का स्वप्न देखा जा रहा है, वह सफल नहीं होगा । आत्मा को लेकर ही मानव जीवन है। जीवन के आडम्बर के भीतर सत्य वस्तु प्रच्छन्न हो गई है। ज्ञान का विकास होने पर ही आत्म-लाभ होगा इसके लिए शिक्षा की आवश्यकता है। यह शिक्षा योग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। योग के पथ में अग्रसर होने पर जो समृद्धि और सम्पत्ति उद्भूत होगी उसका बाहरी साम्राज्य है। अपने को पाजाने और जान लेने से स्वराज्य प्राप्त होता है। स्वराज्य प्राप्त होने के बाद ही साम्राज्य की रचना होती है ।

बुद्धि मानव जीवन का श्रेष्ठ तत्व है । इसी बुद्धि द्वारा देह राज्य पैदा होता और उसका काम चलता है। बुद्धि ने अपने स्वर्ण पात्र द्वारा जो करोड़ों सूर्य के समान अन्तरात्माओं को आवृत करके रखा है, उन्हें समेटना होगा-तभी ज्ञान-सूर्य की किरणों के प्रभाव से देह राज्य का नवीन रूप पैदा होगा ।

———

गृहस्थ योगी

(ले० पं० भोजराज शुक्ल, ऐत्मादपुर, आगरा)

गृहस्थ, जिसने धर्म परायण होकर काम, क्रोध, लोभ और मोह को वश कर लिया है, सच्चा योगी है। गेरुआ वस्त्र धारण करने वाला लोक में मान, बड़ाई तथा मोह रखने वाला पुरुष, सच्चा योगी नहीं कहा जाता। क्योंकि गृहस्थ, अपने समस्त व्यवहारों को निरन्तर करता रहता है, यदि उसका चित्त क्षीण वासना वाला है, तो वह योगी ही है। संन्यासी का चित्त यदि समाधिस्थान में चञ्चल है, तो वह चञ्चलता ब्रह्म में सावधान उन्मत्त के नृत्य के तुल्य है। यदि कोई संन्यासी अपने शिष्यों तथा शिष्याओं से सेवा कराते हैं, तो धर्मिष्ठ गृहस्थ को अपने पुत्रों तथा पुत्र बधुओं से सेवा कराने में क्या हर्ज है? गृहस्थाश्रमी सब कर्मों की फलासक्ति का त्याग कर समय विभाग द्वारा अर्थ, धर्म, काम का अनुष्ठान करते हुए ब्रह्म परायण होकर मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं, तभी तो गृहस्थों के लिये पञ्च-महायज्ञ का विधान, बतलाया गया है। इन सबका त्याग करके मोक्ष के लिये साधना करना कष्ट साध्य है। किन्तु फल की कामना छोड़ के इन कर्मों को करते हुए अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा निश्श्रेयस् प्राप्त करना चाहिये। देवऋण, पितृ ऋण और ऋषि-ऋण को चुका कर ही मनुष्य बन्धन-मुक्त हो सकता है। जो बिना ऋण चुकाये भाग निकलता है, वह अवश्य पकड़ा जाता है, उसे येन केन प्रकारेण ऋण को चुकाना ही पड़ता है। एक जन्म में न सही, तो अनेक जन्मों में। तीनों ऋण से मुक्त होने के पश्चात् जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन संन्यास ले सकता है। बिना ज्ञान और वैराग्य के संन्यास लेना निषेध है। आज कल प्रायः ऐसे संन्यासी देखने में आते हैं, जो कि दमड़ी चमड़ी से लगे हुए हैं। भविष्य पुराण का वचन है।

मिष्टान्न कामै रल्पज्ञैर्लोलुपै र्वञ्चकैः कलौ।
ज्ञान वैराग्य हीनैस्तु, संन्यासोऽस्तं गमिष्यति॥

अर्थ—कलियुग में जिह्वा लोलुप, अल्पज्ञानी, लोभी, बञ्चक तथा ज्ञान, वैराग्य हीन पुरुषों के कारण संन्यास नष्ट हो जायगा। इसी कारण योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान् कलियुग के आने से प्रथम ही अर्जुन को उपदेश कर गए हैं।

संन्यासः कर्म योगश्च, निश्श्रेयस् करावुभौ।
तयोस्तु कर्म संन्यासात्कर्म योगो विशिष्यते॥

अर्थ—यद्यपि संन्यास और कर्म योग समान निश्श्रेयस्कर हैं, तथापि मेरे विचार में संन्यास की अपेक्षा कर्म योग ही अधिक उत्तम है।

यज्ञ, दान, तप तथा कर्मों के अनुष्ठान से ही विद्वान पवित्र होते हैं, अतः इनको हेय न समझना चाहिये। फलेच्छा तथा आसक्ति को त्याग कर ही मनुष्य कर्मों को करे, इसी में उसका कल्याण है। अतएव कल्याणाभिलाषी पुरुषों को चाहिये कि जैसे हो वैसे अपने हृदय से वासनाओं को दूर करें और कामासक्त पुरुषों की संगति से बचते रहें। कामी (आसुरी सम्पति) का पुरुष वही कहा जाता है, जो यह चाहता है कि पृथ्वी में जितना धन है, वह किसी प्रकार से मेरे ही पास आजावे, मैं सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का भोगने वाला हो जाऊँ, मैं ही सब पर आज्ञा करने वाला होऊँ। मेरे पर आज्ञा करने वाला कोई न हो इत्यादि ऐसे विचार के पुरुषों से बचना चाहिए। दैवी सम्पत्ति के पुरुषों से प्रेम रखके इसी सम्पत्ति को सदैव धारण करे, वही गृहस्थ सच्चा योगी है।

मानवजन्म और योगतत्व।

(ठाकुर बलवीर शाही रेणु टिंहरी)

मानव जन्म क्यों हुआ ?—यह प्रश्न जीवन की सब से बड़ी और पहली पहेली है। इस में सन्देह नहीं कि इस पहेली के निराकरण करने के लिये जाने कब से सारे विश्व भर के विभिन्न देशों में अनेक महात्माओं का आविर्भाव होता आया है। जिसने इसके जितने अंश तक गवेषणा पूर्ण विचार विमर्श किया एवं जितनी इसकी अपरोक्षानुभूति प्राप्त की उसने उतनी ही सीमा तक उसे सत्यरूप से अभिव्यक्त किया है। अतएव इस नानात्व मय संसार में इसी हेतु नाना मत, वाद, संप्रदाय, एवं पन्थाओं का आविर्भाव हुआ है और होता आ रहा है। फलतः यह नहीं कहा जा सकता कि कौन पथ इस पहेली के पूर्ण रूप का साक्षात्कार करा देने में सक्षम हैं, और कौन नहीं! वस्तु तस्तु अपरोक्षानुभूति ही इस विषय में सत्य की कसौटी है,—यह निर्विवाद है।

सृष्टि में हम देखते हैं कि अनन्त सागर का अपरिमित जल सूर्य्य की प्रखर किरणों से प्रतप्त होकर बाष्प रूप में परिणत हो जाता है। वह बाष्प वायु से उन्नत हुआ आकाश मण्डल में स्थिर होकर 'बादल' संज्ञा को प्राप्त होता है। फिर वही बादल शीतल समीर से सम्पृक्त हुआ जल कणों के रूप में परिणत होकर भूमण्डलमें गिर जाताहै। वे जल कण गिरिशिखर से निर्झर रूप में, नद रूप में, पुनः नदी रूप में होते हुए अन्ततः अपने उसी मूल स्रोत सागर में जाकर निज रूप को प्राप्त हो जाते हैं। जल-विन्दु का यह अनादि क्रम अनन्तकाल से निरवच्छिन्न रूप से चला आ रहा है।

तद्वत् पूर्ण एवं अनन्त वर्णनातीत समष्टि चैतन्य से व्यष्टि रूप चैयन्य की सृष्टि हुई है। इसी व्यष्टि चैतन्य की जीव संज्ञा है। जिस प्रकार उसकी परमाक्रिया महा शक्ति भी अनादि और अनंत है। यह समष्टिपूर्ण चैतन्य स्वरूपतः निष्क्रिय है, किंतु जड़ नहीं। वह तो सत्तारूप में, साक्षीरूप से, सर्व-काल में, सर्व देश में, पदार्थ मात्र में नित्यरूप से विराजमान है। क्रिया मात्र तो वही परमाक्रिया करती रहती है। यही परमाक्रिया महामाया जीव की जननी है। भगवान् श्री कृष्ण गीता में इस तत्व को यों समझाते हैं:—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय! जगद् विपरिवर्त्तते॥
९। १०

इस चराचर सृष्टि को उत्पन्न करने वाली महामाया प्रकृति ही कारण है। मैं तो उसकी इस क्रिया में अध्यक्ष (साक्षी मात्र) हूँ। इसी कारण हे कौन्तेय! यह संसार गतिशील है और प्रति क्षण विशेष २ परिवर्तनों को प्राप्त होता रहता है।

सत्व, रजस् और तमस्—इन तीनों गुणों से संयुक्त होने के कारण ही प्रकृति को त्रिगुणात्मिका, त्रिधाम जननी आदि कहा गया है। इन तीनों के उपादानत्व से यावत् चराचर की सृष्टि होती है। सत्व, रजस्, तमस् महत्तत्व, अहंकार, बुद्धि, चित्त, मन, पंचतन्मात्रा, पंच प्राण, पंच भूत, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रियादि की क्रमशः सृष्टि होती हुई समस्त ब्रह्मांड का सृजन होता है। पराशक्ति महामाया बासना रूप से बीजाङ्कुरन्यायेन जीव के लगी रह कर जन्म-मरण, सुख दुःखादि अनंत द्वंद्वात्मक संसार-चक्र में उसे घुमाती रहती है।

यह सब क्यों और किस लिए ऐसा होता है? यही प्रस्तुत विषय का विशिष्ट सूत्र है। जीव और जगत् की जो इस प्रकार की बंधन-कारिणी सृष्टि है, वह त्रिगुणात्मिका महामाया का विशुद्ध व्यष्टि चैतन्य पुरुष विशेष के निमित्त एक खेल है। किंतु यह खेल तब तक पूर्ण नहीं, जब तक जीव इस बंधन से निर्मुक्त न हो और वह स्वस्वरूप को न प्राप्त हो जाय। इस खेल का बास्तविक अभीष्ट ही यह है कि वह प्रकृति के आवरणों को अतिक्रम करता हुआ स्वाधिष्ठान रूप परम चैतन्य में पूर्णरूपेण विलीन हो सके। वह अपने को पहिचान सके, अन्त में वह जो है उसमें समरस हो सके,—यही मानव-जन्म का मूल प्रयोजन है।

थोथा ब्रह्मज्ञान

एक वैद्य अपनी जीविका के लिए एक नगर में पहुँचा। वहाँ उसने अपना औषधालय स्थापित किया। सैकड़ों व्यक्ति दवा लेते आते और लाभ उठाते, किन्तु जब वैद्यजी दवा के दाम माँगते तो वे ब्रह्मज्ञान का उपदेश देने लगते। कहते हम सब ब्रह्म हैं। आप और हम एक ही हैं। औषधि भी ब्रह्म रूप हैं। फिर ब्रह्म को ब्रह्म से क्या लेना देना?

उस नगर में थोथे ब्रह्मज्ञान का शब्दाडम्बर लोगों ने खूब रट लिया था और बाहर के आदमियों को मूर्ख बनाने के लिए उन्होंने यह अच्छा बहाना ढूंढ़ रखा था। अपने मतलब में तो चौकस रहते, किन्तु जब किसी दूसरे को कुछ देने का अवसर आता, तो ब्रह्मज्ञान की बात बना कर छुटकारा पा जाते।

वैद्यजी इन ब्रह्मज्ञानियों के मारे बड़े चकराये जब दवा लेने आवें, तब तो लोग 'लाभ ज्ञानी' रहें और जब देने का समय आवे, तब ब्रह्मज्ञानी बन जावें। वैद्यजी इस व्यवहार से बड़े दुखी हुए और अपना औषधालय बन्द करके अपने देश वापिस चले जाने की बात सोचने लगे। वैद्यजी सोच विचार में बैठे ही थे कि उस नगर के राजा का एक दूत उन्हें लिवाने आया। वैद्यजी की प्रशंसा दूर दूर तक फैल चुकी थी, राजा ने भी उनके सम्बन्ध में कुछ सुना था। राज कुमार की बीमारी जब अन्य वैद्यों से अच्छी न हुई, तो राजा ने इन परदेशी वैद्य को बुलवाया।

दूतों के साथ वैद्यजी राजा के यहाँ पहुँचे। और राज कुमार की बीमारी का इलाज करने लगे। धीरे धीरे रोग अच्छा होने लगा। एक दिन राजा ने वैद्यजी से कहा—कोई ऐसी दवा बनाइये जिससे राज कुमार जल्दी अच्छा हो जाय।

वैद्य को यह अवसर बड़ा अच्छा जान पड़ा, उसकी समझ में आ गया कि यही मौका ब्रह्मज्ञानियों से बदला लेने का है। वैद्य ने कहा—राजन्, आपके राजकुमार एक दिन में बिलकुल चंगे हो सकते हैं, इस प्रकार की मैं एक दवा जानता हूँ। पर उसके लिए एक कठिन वस्तु की आवश्यकता है, यदि आप उसे मँगा सकें, तो दवा बन सकती है। राजा ने उत्सुकता पूर्वक पूछा—वह क्या वस्तु है? वैद्य ने कहा—'कुछ ब्रह्मज्ञानियों का तेल चाहिये।' राजा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—यह क्या कठिन बात है। हमारी सारी प्रजा ब्रह्मज्ञानी है। अभी सौ दो सौ ब्रह्मज्ञानी पकड़ कर मँगाता हूँ। राजा की आज्ञा पाते ही पुलिस के सिपाही ब्रह्मज्ञानियों की तलाश करने के लिये चल दिये।

नगर में यह खबर बिजली की तरह फैल गई थी कि राज कुमार के लिये ब्रह्मज्ञानियों के तेल की जरूरत है। इस समाचार से सब के कान खड़े हो गये। पुलिस के जत्थे बड़ी सरगर्मी के साथ खोजते फिर रहे थे कि ब्रह्मज्ञानी कौन है? परन्तु कुछ भी पता न चला, जिससे पूछते मना कर देता। बड़े बूढ़ों, मुखिया पंचों से पूछा गया, तो उन्होंने गिड़गिड़ा कर यही कहा—भगवन्! हमारे कुटुम्ब में सात पुश्त से कोई ब्रह्मज्ञानी नहीं हुआ। दूसरे मुहल्ले में तलाश कीजिये। दूसरे मुहल्ले वालों से पूछा गया, तो उत्तर मिला कि हम तो अन्न ज्ञानी हैं, ब्रह्मज्ञान का तो हमने कभी नाम भी नहीं सुना। जब सारे शहर में कोई ब्रह्मज्ञानी न मिला, तो वैद्य ने अपनी दुख गाथा राजा से कह सुनाई और बताया कि किस प्रकार लोगों ने उनके पैसे ब्रह्मज्ञान की आड़ में रख लिये हैं। वैद्य ने दूसरी दवा देकर राजकुमार को अच्छा कर दिया और राजा ने उन थोथे ब्रह्मज्ञानियों को बुला कर वैद्यजी के पैसे दिलवा दिये।

त्राटककी रीति और लाभ

(लेखक—योगीराज श्रीउमेशचंद्र जी, संचालक श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, बम्बई ४)

विशाल विश्व की विलक्षण वाटिका में बढ़िया फूल भी हैं और नुकीले कांटे भी। मनुष्य को कर्म की पूरी स्वतंत्रता है, वह सुमनों का हार गूँथे या कांटों से शरीर बिंधवाये। सुमन की शौकीनी में कांटों का चुभ जाना स्वाभाविक है। इससे यदि डरकर, चीख कर भाग निकला तो उसके भाग्य में सुगंधि का रसास्वादन है ही नहीं। संसार में करने, बढ़ने और डटने वालों को ही कुछ मिलता है। आप में परमात्मा का अंश, आत्मा मौजूद है। चाहे आप उसे प्रभाकर की तरह प्रकाशित करें या मृत्तिका पिंड की भांति निस्तेज !

हम ऐसे लोगों की बहुतायत देखते हैं, जो अपने मतलब में कभी नहीं चूकते और बुरे बुरे कर्म करते हैं। किन्तु जब भेद खुलता है या दण्ड मिलता है, तो कहने लगते हैं, भाग्य में ऐसा ही लिखा था, ऐसी होनी थी, होनहार को कौन मिटा सकता है। कलियुग का प्रभाव है, अच्छे बुद्धि को बुरी कर देता है, बुरे दिनों का चक्कर है, ईश्वर की ऐसी ही मर्जी है, इस प्रकार ब्रह्मज्ञान बघार कर अपने को निर्दोष साबित करना और दूसरों को मूर्ख बनाकर जीवन मुक्त परम हंस का ज्ञान अपने ऊपर लागू करते हैं, जो ब्रह्म को सर्वत्र एक एक समान देखने लगेगा, वह दूसरों के हित और लाभ को अपने लाभ से किसी प्रकार कम नहीं समझ सकता। वह पाप पुण्य से बहुत ऊँचा उठ जाता है, किन्तु हम साधारण लोगों के लिये तो प्रेम और परोपकार यही ब्रह्मज्ञान है। स्वयं कष्ट सह कर दूसरों का भला करना, यही उत्तम वेदान्त है।

योग का विधान आपके सामने है। आप प्राचीन ऋषियों की इस पूंजी से लाभ उठावें, जिसे जीवन में उतार कर आज पश्चिम सम्पन्न बन रहा है।

योग शास्त्रांतर्गत छै (६) प्रकार के कर्म हैं। जिसका नाम नेति, धोति, नौलि, बस्ति, त्राटक और कपालभाति है। ब्रह्मदातण, कुंजल क्रिया आदि कर्म हैं। वह षटकर्म के अन्तर्गत है। स्थूल शरीर में रोगोत्पादन करने वाला मल है। बात, पित्त और कफ की अधिकता और विकार ही रोगों का कारण है और उसके साथ सप्त धातुओं का विकार भी। स्थूल और सूक्ष्म ऐसे दो प्रकार के मल हैं। छोटी आँत, बड़ी आँत, अन्नाशय-कोष, किडनी आदि अवयवों में स्थूल मल उत्पन्न होता है और ज्ञानेन्द्रियों के साथ सम्पर्क रखने वाली रक्त वाहिनी नाडियाँ तथा सारे शरीर में रहने वाली वायु वाहिनी नाडियों, स्नायुग्रन्थियों, रस ग्रन्थियों में सूक्ष्म मल उत्पन्न होता है। त्राटक कर्म और कपाल भाति कर्म, वे सूक्ष्म मल को नाश करते हैं।

त्राटक की बनावट।

एक फुट चौरस कागज का गत्ता (Card board) लीजिये और उस पर सफेद कागज चिपका दीजिये। उसके बीच में आधा इञ्च गोल काला निशान कर दीजिये और उसके इर्द गिर्द चारों ओर किरणों के समान रेखायें खींच लो। बनाने में नहीं समझो तो किसी योगाश्रम से त्राटक चार्ट खरीद लो। उसकी कीमत चार आना है। कम से कम ५ वर्ष तक चार्ट को उपयोग में ला सकते हो।

त्राटक चार्ट ठीक आंख के सामने (अधिक ऊँचा व नीचा न हो) दीवाल पर टांग दो और उससे तीन फीट दूर पद्मासन व स्वस्तिकासन लगाकर बैठ जाइये। उस काले निशान की तरफ

देखना आरम्भ (शुरू) करो। प्रथम दिन एक मिनट तक बिना आंख बन्द किये एकटक देखते रहो। दूसरे दिन डेढ़ मिनट, तीसरे दिन दो मिनट तक। इस क्रम से आधा मिनट का अभ्यास नित्य बढ़ाते जाइये। जब चार मिनट तक बठने लगो तब चार मिनट आंखें बन्द कर बैठ जाइये। जो कि कदाचत् तीन मिनट के ही अभ्यास से त्राटक चार्ट के मध्य काले निशान और किरणें प्रकाशित हो जांयगी यानी काली नहीं दीखेगी। बाद आंख बन्द कर लेने पर दोनों भौंओं (Eye-brow) के बीच में दृष्टि स्थिर करो। जो प्रकाश त्राटक चार्ट में दीखता, वही अन्दर भी दीखेगा (दिव्य-चक्षु में)।

अब यह प्रकाश त्राटक चार्ट का नहीं है, यह तो तुम्हारा है। कारण त्राटक चार्ट जड़ है इस में त्राटक कहां से आसकता है। अब इसी प्रकार अभ्यास आगे बढ़ाते जाइये और तेरह दिन तक बिना नागा लगातार करने रहते के पश्चात् दूसरा कोर्स आरम्भ (शुरू) होगा।

बैठते समय सिर तक सारा शरीर दीख पड़े, ऐसा शीशा चाहिये। उसे अपने सामने रखकर बैठ जाओ और अपनी दोनों भौंओं के मध्य (आज्ञा चक्र में आधा इञ्च का गोल काला निशान करो और कांच का प्रतिबिम्ब में देखना शुरू करो। पहिले दिन दो मिनट देखो और इसी तरह प्रति-दिन १ मिनट बढ़ाते जाओ। आधे घण्टे तक बराबर बढ़ाते रहो।

जब तक कर्म चालू हो भारी भोजन मत खाओ। त्राटक करते समय आंखों को तानो या अधिक फाड़ो नहीं, मध्य स्थिति में रखो। जैसे किसी मनुष्य की तरफ देखते हो। हमेशा एक ही आसन से बैठो। कर्म करते समय आसन बदला-बदली नहीं करना चाहिये और विचार पवित्र रहना चाहिये। एक चित्त से अपने उपासना देव या ॐ का मन में उच्चारण करते रहना चाहिये। यदि तन्दुरुस्ती चाहते हो तो वही इच्छा करनी चाहिये। इसके सिवाय दूसरे विचार नहीं आने पावे। उसका ध्यान रखना चाहिये। त्राटक कर्म के पश्चात् ठण्डे जल से आंखें धो डालिये।

लाभ

आधा घण्टा अभ्यास हो जाने पर त्राटक सिद्ध होता है। इससे चित्त प्रसन्न रहता है। अन्तर आलोकित होता है। मन स्थिर रहता है। मस्तिष्क शांत रहता है। स्वास्थ्य और सौंदर्य में वृद्धि होती है। निद्रा अच्छी आती है। आंखों की ज्योति बढ़ती है। कमजोर निगाह वालों को त्राटक हरे पानादि के पत्ते पर करना अधिक लाभप्रद है। शरीर में सात्विक गुण बढ़ता है। रजो गुण और तमो गुण सामान्य रूप से रहता है। चश्मा का उपयोग करने वाले अवश्यमेव त्राटक कर्म करें। हिप्नोटिज्म, मेस्मेरिज्म आदि आदि विद्या सीखने वाले को प्रथम त्राटक कर्म में पारंगत होना पड़ता है। स्मरण शक्ति बहुत बढ़ती है। अर्थात् हाई स्कूल, कालेज में पढ़ने वाले विद्यार्थी एवं विद्यार्थिनियों को त्राटक कर्म सीखना अत्यंत लाभप्रद है। त्राटक कर्म के लाभ से परीक्षा में अवश्यमेव उत्तीर्ण होवेंगे। १० वर्ष उम्र से १०० वर्ष उम्र तक के स्त्री, पुरुष, रोगी, निरोगी एवं सर्व स्त्री पुरुष त्राटक कर्म को कर सकते हैं। त्राटक करने का उत्तम समय प्रातः काल सूर्य उदय होने के पश्चात् ६ बजे तक।

यदि मनुष्य जीवन को उच्च विजयी बनाना चाहता है तो अपने ऊपर आने वाली आपदाओं, कठिनाइयों और अपमानों से जरा भी नहीं डरना चाहिये, न निराश ही होना चाहिये।

× × × ×

मृत्यु के बाद जीवित होने का मन्त्र सीखना चाहो तो वह मन्त्र 'त्याग' है। बीज के मरने पर ही बाजरा पकता है। मृत्यु के समान कष्ट भोगकर माँ बच्चे को जीवित रखती है।

शास्वत सुख की खोज

(महात्मा जेम्स ऐलन)

क्या आप उस नित्य सुख की तलाश में हैं, जेसका कभी नाश नहीं होता ? क्या आप उस प्रसन्नता को ढूंढ़ रहे हैं जो स्थायी है और जिसके बाद दुख के दिन शेष नहीं रह जाते ? क्या आप प्रेम, जीवन और शान्ति के स्रोतों के लिये लालायित हैं ? अगर ऐसा है, तो आप तमाम बुरी तृष्णाओं और स्वार्थ पूर्ण भावनाओं का परित्याग कर दीजिये। क्या आप दुख के रास्तों में ठोकर खा रहे हैं ? क्या आपको दुख और शोकों ने उद्विग्न कर रखा है? क्या आपका मार्ग कंटकाकीर्ण है ? क्या आप उस विश्राम के स्थान की तलाश में हैं जहाँ क्रन्दन और रोदन बन्द हो जाता है ? अगर ऐसा है, तो आपको अपने स्वार्थ का दमन करके हृदय को शीतलता देनी चाहिये।

ऐ श्रम से चूर हुए भाई ! आओ अपने समस्त प्रयत्नों को छोड़ कर अनन्त अनुकम्पा के स्थायी केन्द्र परमात्मा की तलाश करो। सत्य के सरोवर को ढूंढ़ रहे हो, तो स्वार्थ की निर्जन मरु भूमि में भटकने से क्या लाभ ? इस पापमय जीवन की गठरी को पीठ पर लाद कर सत्य की शोध के पथ पर भला कैसे चल सकोगे ? इसलिये आओ ! वापस आओ। विश्राम करो और अपने पथ का आदि अन्त जान लो। अपना और अपनी प्रिय वस्तु का स्वरूप जान लो तब आगे बढ़ना।

तुम्हारा प्रभु, न तो पर्वतों की कन्दराओं में कैद और न किन्हीं नदी नालों में घुला हुआ है। जरा आँख खोल कर देखो, तुम्हारे आस-पास फैली हुई धूलि के कणों में भी मौजूद है। वायु के साथ मिल कर वह हर घड़ी तुम्हारे मस्तक पर हाथ फेरता रहता है।

ऐ थके हुए बन्धु ! दर दर भटकने की अपेक्षा उसकी दया को प्राप्त करो। स्वार्थ की मृग तृष्णा में भटकना छोड़ो, आओ ! सत्य की शीतल सरिता में स्नान करो और प्यास बुझाओ।

परमहंस रामकृष्ण के उपदेश

किसी राजा को अपने सेवक के यहाँ जाना होता है तो वह उसके यहाँ कुर्सियाँ, फ़र्श, ग़लीचे आदि सजावट की आवश्यक सामिग्री भेज देता है, ताकि वह उसका स्वागत कर सके। इसी प्रकार परमात्मा दर्शन देने से पहले वह अपने भक्त के हृदय में प्रेम, पवित्रता और श्रद्धा उत्पन्न कर देता है।

जब तक समुद्र का पानी हिलता रहता है तब तक उसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं पड़ता उसी प्रकार जब तक मन में वासनाओं की अस्थिरता है तब तक उसमें ईश्वर का प्रतिविम्ब नहीं पड़ सकता।

तुरन्त का पैदा हुआ बछड़ा पहले बार बार डिगमगाता है और उठते ही गिर पड़ता है,उसी प्रकार धर्म मार्ग में कई बार असफलता होती है,परन्तु पीछे दृढ़ता आजाती है।

एक छोटे पौदे के आस पास बाढ़ खड़ी करके उसकी रक्षा करनी पड़ती है कि कहीं उसे पशु न चर जाँय, किन्तु जब वह बड़ा हो जाता है, तो उसके नीचे अनेक पशु विश्राम करते रहते हैं। इसलिये आरम्भ में बुरी संगत से बचना चाहिये,किंतु जब आत्मा महान् हो जावे तो दुर्जनों से कुछ हानि नहीं होती।

चुम्बक पत्थर वर्षों पानी में पड़ा रहे तो भी उसका अग्नि उत्पन्न करने का गुण नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष चाहे बुरे लोगों के बीच रहते रहें, पर उनके सद्गुणों में कमी नहीं आती।

एक मनुष्य को कुआ खोदना था उसने एक जगह बीस हाथ खोदा वहाँ पानी न निकला तो दूसरी जगह खोदा, इसी तरह उसने बहुत सी जगह थोड़ा-थोड़ा खोदा पर कहीं पानी न निकला। एक विद्वान् ने उससे कहा, मूर्ख ! यदि एक ही स्थान पर इससे चौथाई भी मिहनत करता तो पानी निकल आता। चंचल मनुष्य धैर्य खोकर एकके बाद दूसरा काम टटोलते हैं पर यदि वे एक ही लक्ष पर स्थिर रहें तो सफल हो सकते हैं।

तप की महिमा अपार है

(ऋषि तिरुवल्लुवर)

तप की महिमा अपार है। तपस्या से मनुष्य तेजस्वी होता है, बलवान् होता है, शत्रुओं को जीत सकने में समर्थ होता है, मन चाही इच्छाओं को पूर्ण कर सकता है, स्वस्थ रहता है, ऐश्वर्य प्राप्त करता है, सोने की तरह चमकता है, स्वर्ग प्राप्त करता है और अमर तक बन जाता है।

पर यह तप है क्या? है—सुनो! दूसरों की भलाई के लिये अपने सुखों की परवाह न करना यही तप है। तुम्हारे उपकारों के बदले में यदि कोई प्रशंसा न करे, कृतज्ञता प्रगट न करे तो भी कुछ परवाह मत करो, यहाँ तक कि भोजन वस्त्र में भी न्यूनता आवे और सर्दी गर्मी से बचने का भी प्रबन्ध न हो तो इन सब कष्टों को खुशी-खुशी से सहन करलो, यह मत सोचो कि दूसरे लोग थोड़े परिश्रम से बहुत सुख पाते हैं और तुम्हें बहुत करने पर भी कुछ सुख नहीं मिलता। सच समझो उन्हें कुछ नहीं मिलता है और तुम्हें बहुत मिलने वाला है। तप परीक्षा है, यदि तुम इसमें उत्तीर्ण होते हो, खरे तपस्वी सिद्ध होते हो, तो वह सब विभूतियाँ तुम्हें प्राप्त होंगी जो कि तपस्वियों को प्राप्त होती रहती हैं।

हमें दुनियाँ में भुखमरों की पलटनें दौड़ती दिखाई पड़ती हैं, यह लोग तप का महत्व भूल गये हैं और बीज बो कर फसल तक ठहरने पर विश्वास नहीं करते। प्रभु, इन्हें बीज देता है कि इसे बोओ और सींचो ताकि हज़ार गुना अन्न उपजे और तुम्हारे भंडार भर जावें, किन्तु इन्हें इतना धैर्य कहाँ? आज के बीज को यह आज ही कुटक लेते हैं और खाली हाथ हिलाते फिरते हैं। क्या इस प्रकार इनका पूरा पड़ेगा? तपस्वी-बुद्धिमान् किसान है, वह कष्ट सहकर खेती करता है और फसल तक के लिये विश्वास पूर्वक ठहरता है। जब पौदे पकते हैं तो वह देखता है कि उसकी मिहनत अकारथ नहीं गई। जो बीज रेत में बखेर दिया गया था वह हजार गुना होकर लौट आया है।

——

दंभ मत करो

(महात्मा ईशा के उपदेश)

जब तुम दान करो तो नगाड़े मत बजवाओ। जैसे कि दंभी लोग ज़रा सा शुभ-कर्म करते हैं और उसका ढिंढोरा गली-गली में पिटवाते हैं ताकि लोग उनकी बड़ाई करें। मैं तुम से सच कहता हूं कि वे अपना फल पा चुके। जब तुम दान करो तो जो तुम्हारा दाहिना हाथ करता है उसे बाँया हाथ न जानने पाये। तुम्हारे गुप्त दान को अदृश्य पिता जानता है और वह बदला देना न भूलेगा।

जब तुम प्रार्थना करो तो धूर्तों की तरह चौराहों पर और हाट बाजारों में प्रदर्शन मत करो। अपने विज्ञापन के लिये जो भजन करते हैं वे अपना फल पा चुके। एकान्त स्थान में सच्चे हृदय से जब तुम प्रार्थना करोगे तो घट-घट वासी पिता उसे देखेगा और बदला देगा। प्रार्थना करते समय गला फाड़ कर चिल्लाओ मत और न बहुत बक-करो। वे और ही लोग हैं जो समझते हैं कि हमारे बहुत बकने पर ही परमात्मा सुनेगा। तुम्हारे माँगने से पहले ही प्रभु जानते हैं कि तुम्हें क्या चाहिये। तुम इस प्रकार प्रार्थना करना कि 'हे पिता तेरी जय हो! तेरे पवित्र नाम को दुनियाँ समझे, तेरी इच्छा पूर्ण हो। हमारे अपराध क्षमा कर। हमें परीक्षा में न डाल, पर बुराई से बचा।'

तुम व्रत रखो तो पाखण्डियों की तरह अपने मुंह पर उदासी मत आने दो। जब तुम उपवास करो तो चहरे पर प्रसन्नता बनाये रहो ताकि लोगों को नहीं पर अपने अदृश्य पिता को उपवासी दिखाई दो, परम पिता जो गुप्त बातों को भी जानता है तुम्हें बदला देगा।

यदि तुम दूसरों के अपराध क्षमा करोगे तो तुम्हारा पिता भी तुम्हारे अपराधों को क्षमा करेगा। पर यदि तुम दूसरों के अपराध क्षमा न करोगे तो परम पिता भी तुम्हारे अपराधों को क्षमा न करेगा। सावधान रहो! प्रदर्शन और ढोंग के साथ धर्म कार्य न करो, नहीं तो कुछ फल न पाओगे।

कलियुग या सतयुग ।

(ले० श्री सत्य भक्त सम्पादक 'सतयुग')

कुछ समय से हमारे देश में एक नया आन्दोलन सतयुग-आगमन का आरम्भ हुआ है। विभिन्न स्थानों में ऐसे दल या व्यक्ति उत्पन्न हो रहे हैं. जो कहते हैं कि अब कलियुग का अन्त बिल्कुल पास आ गया है और थोड़े ही समय में सतयुग का आविर्भाव होगा। इनमें से कितने ही लोग यह भी मानते हैं. कि यह सतयुग ता० १ अगस्त १९४३ को आरम्भ होगा।

कुछ लोगों का यह ख्याल है कि यह सतयुग आन्दोलन फ़ज़ालिका के स्वामी राज नारायण जी ने शुरू किया है, पर यह ठीक नहीं। खोज करने पर पता लगा है, कि यह कम से कम साठ सत्तर वर्ष पुराना अवश्य है। उस समय श्री बालमुकुन्दजी नाम के भक्त ने इसका दिल्ली में प्रचार किया था। बाल मुकुन्द जी की जीवनी हाल ही में खोज कर 'सतयुग' (मासिक पत्र) में प्रकाशित की गई थी। उसमें मालूम होता है, कि सन् १८८० के लगभग बालमुकुन्द जी प्रेमोन्मत्त होकर बन और जंगलों में कल्कि भगवान को ढूंढते फिरते थे। उन्होंने कुछ साथियों को लेकर कल्कि मंडल की स्थापना की थी जो आज तक कल्कि अवतार और सतयुग आगमन का प्रचार कर रहा है. सन् १९१० के लगभग बंगाल में स्वामी दयानन्द नामक महापुरुष ने सतयुग आगमन का संदेश सुनाया। आज भी बंगाल में उनके हजारों अनुयायी मौजूद हैं, जो कीर्तन द्वारा युग-परिवर्तन की चेष्टा कर रहे हैं। इसी समय के आस पास हरिपुर योगाश्रमके योगिराज स्वामी दयानन्द जी ने अवतार और 'सतयुग' का झंडा उठाया था और 'कल्कि पत्रिका' नाम की एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित की थी। इस समय तो संसार के सैकड़ों प्रसिद्ध व्यक्ति जिनमें हमारे देश के अध्यात्म ज्ञान के विख्यात ज्ञाता श्री अरविन्द घोष तक सम्मिलित हैं, शीघ्र ही युग परिवर्तन होने का समर्थन कर रहे हैं। उनके विचार जुलाई की 'अखण्ड ज्योति' में ही मौजूद हैं।

इन सब बातों को लिखने से मेरा तात्पर्य यही है कि आन्दोलन केवल बालकों का खिलवाड़ नहीं हैं, अच्छे-अच्छे विचारशील व्यक्ति इसके समर्थक और प्रचारक हैं। खेद है कि 'सतयुग आगमन' के खण्डन या मण्डन करने वाले लोग इन आत्मदर्शी विद्वानों की बातों पर गौर नहीं करते और मनुस्मृति अथवा भागवत के एकाध श्लोक के अर्थ को लेकर बेकार की खींचा तानी कर रहे हैं। मैं 'सतयुग-आगमन' के विषय में विचार करते समय कभी कुल्लूक भट्ट या मेधातिथि के फेर में नहीं पड़ा। मुझे तो समय के प्रत्यक्ष चिन्हों और साथ ही अनेक ज्ञानी पुरुषों के कथनों से यह विश्वास होता है कि अब मौजूदा जमाना बहुत जल्द बदलेगा जो नया जमाना आयेगा वह मौजूदा जमाने से श्रेष्ठ और जन साधारण के लिये कल्याणकारी होगा।

इसीलिये हम उसे 'सतयुग के नामसे पुकारते हैं क्योंकि शास्त्रों में सतयुग का यही प्रधान लक्षण बतलाया है कि उसमें सत्य और न्याय की अधिकता होती है और लोग धर्माचरण करते हैं, जिसका फल कल्याणजनक होता है।

यही मेरी समझ के अनुसार सतयुग की व्याख्या है। आशा है पाठकों को इसमें कोई अस्वाभाविक या रहस्य पूर्ण बात न जान पड़ेगी। कलियुग की भावना ने हिन्दू जाति का बड़ा अहित किया है इसके कारण उसमें सैकड़ों दोष पैदा हो गये हैं और सब के लिये एक बहाना पैदा कर दिया गया है कि आज कल तो कलियुग है, अगर लोग पाप करते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? इस दृष्टि से यह अधोगति का एक बहुत बड़ा कारण है। इस भावना को दूर करके सतयुग की भावना पैदा करना कौन सत्पुरुष न चाहेगा ?

परमार्थ में स्वार्थ।

श्री धर्मपाल जी बरला)

किसी महापुरुष का वचन है:--

मनसा बाचा कर्मणा जो नर एक समान
तामें और भगवान में, किंचित भेद न जान

इस पद से हमें यह शिक्षा मिलती है, कि मनुष्य जैसा मन से सोचे वैसा ही वाणी से कहे और जैसा वाणी से कहे वैसा ही कार्य रूपमें करके दिखावे-यही सत पुरुषों के कार्य करने का मार्ग है। उनके यह तीनों स्थान एकता और सत्य की डोरी से बंधे हुए होते हैं, तभी उनके हृदय मन्दिर में भगवान आ विराजते हैं, जिनकी शक्ति से हर कठिन से कठिन कार्य आनन फानन में उनके द्वारा होता दिखाई देता है, जिसे देख कर दूसरे व्यक्ति जिनके मन, वाणी और कार्य में एकता नहीं है आश्चर्य में भर दाँतों में अंगुली दवाते हैं। इसी गुर को काम में न लाकर मनुष्य पापों की दलदल में फंसते रहते हैं, और अपनी हर प्रकार की उन्नति में स्वयं बाधा पहुचाते हैं। हम जो कुछ भी करते हैं, वह सर्व प्रथम मन से होता है। उपरोक्त पद में भी मनसा (मन) शब्द कवि ने प्रथम इसी लिए रक्खा है। कार्य का प्रथम स्थान मन है। आध्यात्मिक उन्नति के लिए तो मन का पवित्र करना अति आवश्यक कहा गया है? मनको पवित्र करने के लिए वेद में भगवान से अनेक प्रार्थना की गई हैं। मन से जैसा हम सोचते हैं, वास्तव में कार्य की वही आकृति है। पाप पुण्य का स्थान भी हमारा मन है। हानि, लाभ, सुख दुःख भोग वश प्राप्त होते हैं। ऐसा महात्मा तुलसीदासजी ने रामायण में कहा है। मनुष्य किसी का हानि लाभ नहीं कर सकता। यदि हम दूसरे को अपने मन से हानि पहुँचाना सोचते हैं, जो कि भोगवश उसको पहुँचना अवश्य थी, तो इस प्रकार मन ने उसके लिये बुरा चाह कर हमने अकारण पाप मोल ले लिया,क्योंकि हानि तो हमारे बिना चाहे भी अवश्य उसे होती। इसी प्रकार यदि हम मन से किसी की भलाई चाहते हैं और भलाई उसके भोगवश उसे मिलती है, तो हम अनायास ही पुण्य के भागी बन जाते हैं, इसलिये मन से सदा दूसरों का कल्याण ही सोचना श्रेष्ठ और हितकर है। दूसरों का हानि, लाभ विचारना अपना ही हानि लाभ विचारना है, जो दूसरों का लाभ सोच रहे हैं, वह अपना लाभ कर रहे हैं। इसके द्वारा उनका मन शुद्ध पवित्र बन रहा है, मन शुद्ध होकर प्रभु के पवित्र प्रेम को प्राप्त करेगा, जो मुक्ती जैसे दुर्लभ सुख की प्राप्ति का हेतु होगा। अतएव मन से सदैव दूसरों का कल्याण सोचिये। होगा तो वही जो होना है, अकारण क्यों बात २ में पापी बना जाय।

रह गया कलियुग के समाप्त और सतयुग के आरम्भ होने का ठीक समय, वह कोई बड़े महत्व की बात नहीं है। कोई आश्चर्य नहीं जो सन् १६४३ में वर्तमान समाज खण्ड-खण्ड होनेलगे और नये युग की नींव पड़जाय। उसकी वृद्धि और विकास धीरे-धीरे सौ पचास साल में होगी। यह भी सम्भव है कि अच्छा जमाना या सतयुग कुछ सौ या कुछ हजार वर्ष तक ही ठहरे और फिर समाज में दोष उत्पन्न होकर हालत बिगड़ने लगे। पर यह लम्बा किस्सा है, और आज यहीं तक लिखना काफी है।

तुमको सब से पहले आत्मज्ञान का ध्यान रखना जरूरी है। सुचरित्रों से आत्मज्ञान मिल सकता है। सुचरित्र मनुष्य वही होता है जो सत्य, दया, ब्रह्मचर्य परोपकारादि व्रतों का यथा योग्य पालन करता है। प्राणों के जाने के समय भी सत्य को नहीं छोड़ता है। स्वयं मरते हुए भी किसी को कष्ट नहीं पहुँचाता है।

संकल्पों का एकत्रीकरण

(श्री स्वामी विवेकानन्दजी महाराज)

जब समुद्र के किनारे कोई बड़ी लहर आकर टक्कर मारती है, तब उससे बड़ी भारी आवाज निकलती है, परन्तु वह लहर करोड़ों सूक्ष्म तरंगों के एकीकरण से उत्पन्न होती है और वह बड़ी भारी आवाज़ भी उन सूक्ष्म तरंगों की तरह छोटी छोटी आवाज़ों के एकत्रीकरण का ही फल होती है। वे छोटी-छोटी आवाज़ें स्वतन्त्र रूप से हमारे अनुभव में नहीं आतीं। इसी प्रकार हमारे हृदय की गति इत्यादि सब क्रियाएं कर्म ही हैं। यदि किसी मनुष्य का सच्चा चरित्र आपको जानना हो, तो उसके किये हुये किसी बड़े कार्य में आप उसकी ठीक ठीक परीक्षा नहीं कर सकते। मौका आजाने पर कोई अत्यन्त कृपण मनुष्य कर्ण को भी लज्जित कर सकता है। यदि ऐसे ही किसी मौके से हम किसी के चरित्र का अनुमान करेंगे, तो प्रायः उसमें भूल होने की सम्भावना है। मनुष्य के प्रति दिन के व्यवहार और उसकी छोटी छोटी बातों का सूक्ष्म अवलोकन करने से ही उसके चरित्र का यथार्थ ज्ञान होगा। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसे मौके आते हैं कि वह उस समय लघुत्व भूलकर कुछ महत्वार्थ कर जाता है।

किसी मनुष्य का दैनिक जीवन ध्यानपूर्वक और निकटस्थ होकर देखने से पता चल जाता है कि वह किस प्रकार के विचार करता है। विचारों की अत्यन्त सूक्ष्म लहरें जब घनीभूत होकर दृश्यमान होती हैं; तो वह कार्य के रूप में दिखाई पड़ती हैं। अपनी व्यापक इच्छा शक्ति से जिन्होंने संसार का स्वरूप ही बदल दिया, वे समर्थ पुरुष बड़े भारी कर्मशील थे। संपूर्ण संसार की उलट पलट देने वाली सामर्थ्य उन्होंने अनेक युगों तक सद्म कर्म-विचार-करके अपने में एकत्र की थी। भगवान् बुद्ध अथवा भगवान् ईसा मसीह ने जन्म जन्मान्तरों से अपने मन में शुभ संकल्पों का बीजारोपण किया था, उनके अन्तिम पराक्रम उन्हीं संकल्पों का एकत्रीकरण समझना चाहिए।

प्रकाण्ड पंडित कावेट

महा पुरुष विलियम कावेट किस प्रकार गरीबी और कठिनाइयों का जीवन बिताते हुए भी प्रकाण्ड पंडित बने और अपने कष्ट मय जीवन को समुन्नत बनासके, इसका वर्णन करते हुए वे स्वयं लिखते हैं-

मैंने आठ वर्ष हल जोता है। मेरा मन पढ़ने के लिये बहुत ही व्यग्र रहता था इसलिए एक दिन मैं अपने गाँव से भाग खड़ा हुआ और लंदन आया, बहुत दिनों तक कागज़ों की नकल करके पेट पालता रहा। जब मुझे छै पैसा प्रतिदिन मजूरी मिलती थी तो भी मैं व्याकरण सीखता रहा। आखिर मैंने सिपाहियों में नौकरी करली। यहाँ कुछ पढ़ने लिखने की सुविधा न थी तो भी परिस्थितियों को मैंने अपने अनुकूल बनाया। झोला से अलमारी का काम और लकड़ी के तख्ते को गोद में रख कर मेज का काम चलाता था। लालटेन जलाने के लिये तेल खरीदने को पैसे नहीं बच पाते थे इस लिये आग जला कर उसके प्रकाश से काम निकालता। कागज स्याही के लिये, आटे में से पैसे बचाने पड़ते थे, इसलिए कई बार आधे पेट खाकर सो जाता।

हर सिपाही को प्रति सप्ताह दो पैसे जेब खर्च के लिए मिलते थे। मैं इन पैसों को पढ़ने की चीज़ें खरीदने में खर्च करता। एक बार कल के भोजन के लिए एक पैसा बचा कर मैंने जेब में रख लिया था। दूसरे दिन भोजन के समय जब जेब में हाथ डाला तो देखा कि वह पैसा कहीं गिर गया है, और जेब खाली है। भूख के मारे मेरा दम निकल रहा था, पर करता क्या ? बिछौने पर सिर रख कर बच्चों की तरह बेकली के आँसू बहाता रहा।

जब मैंने इतनी कठिनाइयों में विद्याध्ययन किया है,और इतनी विपरीत परिस्थितियों को पार करते हुए उन्नति कर सका हूँ तो मैं पूछता हूँ इस दुनियाँ में कौन लड़का ऐसा है या होगा जो काम न करने के लिए कोई बहाना तलाश करे।

महर्षि दधीचि का त्याग

(ले–श्री० मनशाराम विद्यार्थी, गवर्नमेंट हाईस्कूल, एटा)

त्वष्टा का पुत्र विश्वरूप देवताओं का पुरोहित और असुरों का भानजा था। वह प्रत्यक्ष रूप से तो देवताओं को भाग (यज्ञ भाग) देता और असुरों को छिपे-छिपे देता था।

तब हरणकशिपु को अगुआ बना कर असुरों ने विश्वरूप की माता–अपनी बहन से कहा—हे बहिन! यह तुम्हारा पुत्र, त्यष्टासन् विश्वरूप त्रिशिरा जो कि देवताओं का पुरोहित है, देवताओं को तो प्रत्यक्ष रूप से भाग देता है और हमें छिपा कर। इसलिये देवता बढ़ते और हम नष्ट (दुबले) होते जाते हैं। तुम इसे रोको, जिससे यह हमारा साथ देवे।

असुरों की इच्छानुसार विश्व रूप से माता ने कहा—"हे पुत्र! तू शत्रु पक्ष को बढ़ाता हुआ मातुल पक्ष का क्यों नाश करता है? तुझे यह करना उचित नहीं।" वह विश्वरूप 'माता का वचन उल्लंघन करने योग्य नहीं' यह समझ कर और उसे आदरपूर्वक ग्रहण करके हिरणकशिपु के पास गया। इधर ब्रह्म पुत्र वशिष्ठ ने हिरणकशिपु को शाप दिया हुआ था कि चूंकि तूने दूसरे को होता बना लिया अतएव यज्ञ पूर्ण बिना हुए ही तू अपूर्व प्राणी से मारा जायगा। उसके शाप देने से ही हिरणकशिपु बध को प्राप्त हुआ।

तब मातृ पक्ष को बढ़ाने वाला विश्वरूप घोर तप करने में लगा, उसका तप नष्ट करने के लिये इन्द्र ने बहुत सी रूपवती अप्सरा भेजीं। उन्हें देख कर उसका मन चंचल हो गया। तुरन्त ही वह उन अप्सराओं में फँस गया। उसको फँसा हुआ जान कर अप्सराओं ने कहा कि–हम अपने स्थान को जाती हैं।

त्वष्टा पुत्र विश्वरूप ने उनसे कहा—"कहाँ जाओगी! यहाँ मेरे पास ही बैठो, तुम्हारा कल्याण होगा।" उन्होंने उससे कहा–'हम देवताओं की स्त्रियाँ अप्सरायें हैं, हम सब कामनापूर्ण करने वाले समर्थ इन्द्र को ही वरेंगीं।'

विश्वरूप ने उनसे कहा–"आज ही इन्द्र सहि[त] सब देवता न रहेंगे, नष्ट हो जायेंगे।" तब उसने मं[त्रों] का जाप किया। इन मंत्रों के प्रभाव से वह बढ़ [गया] और उसके तीन सिर हो गये। उसने एक मुख [से] तो सब लोकों में अग्निहोत्रादि करने वाले ब्राह्मण[ों] द्वारा विधिपूर्वक हुत सोम का पान किया, एक [से] (दूसरे से) अन्न और (तीसरे से) देवताओं [का] भक्षण करना प्रारम्भ किया।

तब सोम पान से पुष्ट शरीर वाले उस विश्वरू[प] को बढ़ता हुआ देख कर इन्द्र देवताओं सहित चिं[ता] में पड़ गया। इन्द्र सहित देवता ब्रह्मा के पा[स] पहुँचे। उन्होंने कहा–"विश्वरूप सब यज्ञों में हव[न] किया सोम पी जाता है, हमारा भाग ही न रह[ा] इसलिये असुर बढ़ रहे हैं और हम क्षीण हो रहे हैं आप अब हमारा कल्याण कीजिये।"

ब्रह्मा ने उनसे कहा—"भृगु पुत्र दधीचि ऋ[षि] तप कर रहे हैं। जाकर उनसे वर मांगो। ऐसा कर[ो] जिससे वह अपना शरीर त्याग दें, तब उसक[ी] हड्डियों से बज्र बनाओ।" तब देवता लोग भगवा[न] दधीचि ऋषि जहाँ तप कर रहे थे, वहाँ पहुँचे। इ[न्द्र] सहित देवता उनके पास जाकर बोले।

दधीचि ने उनसे कहा–"आप लोगों का स्वाग[त] है, कहिये क्या करूं? जो आप लोग कहेंगे, उ[से] मैं पूरा करूँगा।" उन्होंने उनसे कहा–"लोक [के] कल्याण के लिये आप अपना शरीर परित्याग क[र] दीजिये।"

तब सुख–दुख को समान समझने वाले महा[न] योगी दधीचि ने बिना किसी प्रकार का दुःख प्रक[ट] किये आत्मा को समाधिस्त कर शरीर छोड़ दिया [।] शरीर से जीवन के निकल जाने पर ब्रह्मा ने [उनकी] हड्डियाँ ले बज्र बनाया। न टूटने वाले दुर्जेय ब्राह्म[ण] की हड्डी से बने हुए विष्णु आविष्ट उस बज्र [से] इन्द्र ने विश्वरूप को मारा और उसके सर का[ट] लिये। संसार पर आई हुई विपत्तियों क[ो] निवारण करने के लिये साधु पुरुष अपने शरीर क[ा] भी परित्याग कर देते हैं।

स्वरोदय

(श्री नारायणप्रसाद तिवारी उज्ज्वल, कान्हीबाड़ा)

"स्वर-योग से दिव्य ज्ञान" पुस्तक का समाज जो आदर किया तथा अनेक सज्जनों ने पत्र द्वारा मुझे उत्साहित किया, मैं उन सबका आभारी हूँ।

इसी विषय पर मैं कुछ और भी प्रकाश डालने का साहस करता हूँ। स्वरोदय विषय सरल प्रतीत होते हुए भी गहन है। उपर्युक्त प्रकाशित पुस्तक के बाद मैं इस विषय की इति-श्री नहीं समझता। मुझे कतिपय पाठकों ने यह कहा कि इसमें तत्व-विषय बहुत कठिन है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ, किन्तु अनुभव और अभ्यास से मनुष्य क्या नहीं कर सकता? हताश होना उचित नहीं। पाठक-गण कृपया इस पत्र के मुख-पृष्ठ पर श्रीमान् सम्पादक जी के विचार देखें कि:—

'सुधाबीज बोने से पहले,कालकूट पीना होगा।' इसी प्रकार कोई भी लाभ प्राप्त करने के पहले कष्ट सहन करना ही होगा। लेकिन "करत २ अभ्यास के जड़मत होत सुजान"। मैं इस विषय की खोज में बराबर लगा हुआ हूं और मुझे जो कुछ मालूम होगा, प्रेमी जनों की सेवा में उपस्थित करूँगा। पुस्तक प्रकाशित होने के पश्चात् मेरी भेंट एक पण्डित जी से हुई, जिनके द्वारा उनके पूर्वजों के बँधे हुए बण्डल से मुझे स्वरोदय शास्त्र पर चरनदास जी की हस्तलिखित पुस्तक तथा अस्त-व्यस्त कुछेक कागज़ प्राप्त हुए। उन कागज़ों से (यद्यपि मुझे अपूर्ण प्रतीत हुए) मुझे जो कुछ भी प्राप्त हुए, उनकी चासनी मैं सेवा में उपस्थित करता हूँ:—

स्वर-विचार

सोरठा—

हरि शिष्य शिर नाय, कह दोई कर जोरि कै।
दीजै मोहि बताय, नाथ स्वरन को भेद अब॥

दोहा—

चन्द्र सूर्य मुन्द्रा बसत, परम पुरुष के ठाम।
निर अक्षर सों मिलत है, नरातीत को धाम॥
वाही धाम सिर ऊपरे, कमल सहस दस आंहि।
सो छाया शशि भान की, कमल अष्ट दल माहि॥
वाही के परकास से, स्वाँस बीच दरसाय।
उदय किरन जो मेल के, रवि शशि फेर लखाय॥
मुद्रा है वहँ रहत है, नाड़ी यहाँ कहाय।
सो अब मैं वरनन करूँ, तिनके नाम बताय॥
बांये सुर नाड़ी इड़ा, पिंगला दहिने जान।
दोनों सुर इक दम चले, तेहि को सुखमन मान॥

सोरठा—

सोई ईश्वर में लखे, चन्द्र सूर्य करता उभय।
भोगे विपति विशेष, जो स्वर बिन समझे चलै॥

दोहा—

चन्द्र चलत नाड़ी इड़ा, बायें नासिका स्वांस।
नाड़ी पिंगला जानिये, दहिने सूरज बास॥
इड़ा मध्य गङ्गा बहै, जमुना पिंगला जान।
दो स्वर सम है सरस्वती, नाड़ी सुखमन मान॥
इड़ा नाड़ि के बीच में, चन्द्र बीज माकार।
पिंगल नाड़ि के बीच में, भानु बीज आकार॥
सुखमन नाड़ी में रहै, पावक बीज रकार।
त्रैनाड़ी में रम रहो, आतम राम विचार॥
उन्हें सिद्धि चाहै करन, जपै बीज ले साथ।
लिखो देख मत भूलियो, युक्ती गुरु के हाथ॥

सोरठा—

जारत कर्म रकार, ज्ञान प्रकाश अकार सें।
भक्ति देत माकार, अरु नासत त्रै ताप को॥

(अपूर्ण)

शान्ति और दृढ़ निश्चय का साथ जब न्याय-युक्त कारण के साथ होता है, तब उसके नतीजे में हमेशा जीत ही मिलती है। न्याय के कारण मनुष्य प्राण छोड़ दे, यह उसका कर्तव्य है। अपने लिये प्राण छुड़वा लेना पशु का नियम है।

× × ×

अलिप्त, कर्मकर्ता।

(ले०—पं० श्रीकांत शास्त्री, नारायणपुर)

निविडतम–निशीथ का दर्शनीय दृश्य! चन्द्र-देव की चमकती हुई चाँदनी पृथ्वी की निश्छल छाती पर रंगरेलियां मचा रही थी। सौरभमय सगर्व पवन का सुमधुर सन-सन समस्त प्राणियों में नव-जीवन भर रहा था। लताओं की कमनीय कलियों की मन्द मुस्कुराहट, मादकता उड़ेलने में व्यस्त थीं, पर इस मनोरम वेला भी कृष्णाशक्त गोपबालाओं को क्षणिक सुख भी प्रदान करने में सर्वथा असमर्थ थी। उन पर सुधाँशु की सुस्निग्ध किरणें भी विष-वर्षण कर रही थीं ज्योत्स्नापूर्ण विभावरी भी अन्धकाराच्छन्न थी। कारण? कारण उनका सर्वस्व श्री कृष्ण आज इस समय तक गायब थे। उनका हृदय, आशा, निराशा, भय, आशंका, क्षोभ और ग्लानि का केन्द्र बन रहा था। इतने में पदध्वनि कूबने की आधायिका हुई। उनकी आँखें खुलीं तो वह तृप्त हो गई गद्‌गद् हो गईं। 'देखत बनै न देखते' की उदाहृति बन गईं। उफ़, ये तो आनंदकंद श्रीकृष्णचंद अपराधी सोमुद्रा बनाये खड़े हैं। 'देर हो गई प्रिये! देर हो गई प्रिये क्षमा करो।' भगवान् ब्रज-वैभव नन्द-नन्दन ने कहा। गोप-कन्याओं के हृदय बाँसों उछल पड़े। मान की सोची हुई सारी बातें काफूर हो गईं, ब्रज-विहारी ने फिर गम्भीर स्वर में कहना प्रारम्भ किया:—क्या इस वियोग ने प्रेम-परीक्षा में हमें नीचे गिराया है? नहीं, वियोग की बिसात ही क्या है, जो प्रेम का उन्मूलन कर सके। क्या आकाश और अवनि का अन्यतम अन्तर भी कमल और कमल-प्रसादक सूर्य के प्रेम को निर्मूल करता है? गोपिकाऐं वसंत की कोकिलाओं के समान कुहुक उठीं–तो फिर आज यह अत्यधिक प्रतीक्षा का अवसर आया ही कैसे? वासुदेव ने कहा—हृदयेश्वरी! आज इसका कारण गुरुदेव दुर्वासा का सौभाग्य-गमन है।

वे यमुना पार मांडीर बन में ठहरे हैं। उनकी सेवा–सुश्रूषा ने इतना समय लेलिया, गोप-वालाओं की आशंका ने विस्मय का स्वरूप धारण किया। वे साश्चर्य बोल उठीं। गुरू? गुरू? आपके भी गुरू? भगवान् कृष्ण का चेहरा कुछ और गम्भीर हो उठा और कहना प्रारम्भ किया। इसमें आश्चर्य की बात क्या है प्रिये! गुरू के बिना किसकी जीवन-यात्रा सफल हुई है सुभगे? स्मरण रक्खो, जिसने सच्चा गुरु खोज कर अपनी व्यवहारिकता को गुरु के प्रति ईश्वर की तरह लगा दी है, वह आज ही नहीं तो कल उसे कौन अमुक्त कहने का दुस्साहस करेगा? गोप–सुताओं की जिज्ञासा ने अब दिदृक्षा का स्वरूप ग्रहण किया। वह आकुलचित्त हो कर बोल उठीं—तो हम उन्हें देखना चाहती हैं। क्या इस दुस्समय में भी उनका दर्शन कर कृतकृत्य हो सकती हैं? श्री कृष्ण ने अपनी सफलता की क्षीण आशा देख तत्परता के साथ कहा—हां! हां! अभी जा सकती हो सुन्दरी!

तो यमुना पार करनेका सुगम-साधन? गोपियों ने उत्कंठा पूर्ण स्वर में कहा। ब्रजनन्दन ने गम्भीर मुद्रा में उत्तर दिया—जाओ यमुना से यह कह कर मार्ग माँगना। 'यमुने! यदि कृष्ण बाल-ब्रह्मचारी हैं, तो हमारी राह दे दे।' वह दे देगी। जाने की पूर्ण तैयारी की गई। उपहार के लिये तरह २ की चीजें तैयार हुईं और वे चल खड़ी हुईं। यमुना ने मार्ग दे दिया। दिदृक्षा ने रास्ते के शूल, फूल बना दिये। दुर्वासा का निवास सामने आया। गोप–रमणियों ने दुर्वासा को दंडवत किया और आने की सारी कथा कही। बाद अपना भोजन करने को सभी वाध्य करने लगीं। दुर्वासा ने मन्द–स्वर में कहा—सौभाग्यनि! मैं परमहंस हूँ, अतः अपने हाथ से खा नहीं सकता, मुँह फाड़ता हूँ, जिससे जो हो देती जाओ। दुर्वासा ने अपना मुख कन्दरा सा फाड़ दिया। सभी की थालियाँ साफ होने लगीं और साफ हो कर रहीं। फिर भी दुर्वासा का मुख फटा था।

याद आचमन करा कर चलने की आज्ञा माँगी। दुर्वासा ने क्षीण स्वर में कहा—जा सकती हैं! ऋषि ने मूक-सखियों की मनोभावना समझी और फिर कहना प्रारम्भ किया—यमुना पार की समस्या हल करना चाहती हो न? वह तो हो जावेगी, जाकर यमुना से कहना—यदि दुर्वासा की जिह्वा ने आज तक दूर्वारस के सिवा अन्य रसों का स्वाद नहीं लिया हो तो हमें मार्ग दे दे। वह राह दे देगी। गोपियाँ उल्टे पाँव लौटीं, फिर मार्ग मिल गया।

घर आने पर श्री कृष्ण से त्यौरीपूर्ण भाषा में कहा—देख तो आई जैसे झूठे आप, वैसे वे! क्या आप ब्रह्मचारी हैं? और वे दूर्वारस पाकी? आँखों देखी बातों पर भी हरताल लगाना? श्री कृष्ण ने उनके अभाव को समझा और सुस्मित-शब्दों में कहना आरम्भ किया? 'प्रिये, जिस प्रकार मैं निर्मम, साम्यद्रष्टा, रागद्वेषातीत और निर्गुण होते हुए भी भक्तों की कल्याणकांक्षा करते हुए अपने आचरण को बदलता हूं, वही गति महात्माओं की है। विद्वान वही है, जो संयमशील हो-और सभी कुछ करके भी उसमें क्षणिक आसक्त नहीं होता। उसके सभी कर्म, ज्ञानाग्नि में भस्म हो जाते हैं। संयम-प्रवीण कर्म योगी दैनिक कृत्य करता हुआ भी मुक्त ही है। अनासक्त चित्त से किया हुआ दुष्कर्म भी पाप के प्रतिकूल है। यदि मैं सहस्रों गोपिकाओं से रमण करता हूँ और मेरी आत्मा उस आनन्द से वंचित रहती है तो मैं ब्रह्मचारी ही कहा जाऊंगा। इसी तरह मिष्टान्नों का आस्वादन कर दुर्वासा दूर्वा-रस पाकी ही कहे जायेंगे।'

गोपबालाएं श्री कृष्ण के पतित-पावन चरणों पर मूर्छित हो गिर गईं। उन्होंने कर्म-कलाप के अन्तर्भेदों को जान लिया था, जो मानव-जीवन का चरमज्ञेय है और जिसका ज्ञान चर्म-चक्षुओं को फोड़ कर तीसरे नेत्र विवेक को ज्योतिर्मय कर देता है। कैसी सौभाग्यशालिनी थीं वह। क्या हमें भी वह............।

उत्साह का जादू।

समय बीत गया, अब हम बुड्ढे हो चले क्या करें, अब किस काम को पूरा कर सकते हैं। ऐसा कहने वालों के पास समय, शक्ति अथवा साधनों का अभाव नहीं होता, असल में उनमें उत्साह की कमी होती है। उत्साही मनुष्य के लिये अधिक उम्र होने का प्रश्न नहीं उठता, वह सीखने के लिए विद्यार्थी और काम करने के लिए नौजवान तब तक बना रहता है, जब तक कि वह जीवित रहता है।

डाक्टर जॉनसन ने अपनी सर्वोत्तम रचना, 'कवियों की जीवनियां' अपनी ७८ वर्ष की उम्र में लिखीं। डेनियल डेको जब ५८ वर्ष का था, तो उसने अपनी 'राबिन्सन क्रूसो' पुस्तक छपाई। ८३ वर्ष की उम्र में न्यूटन ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपिया' के नये वर्णन लिखे। प्लेटो लिखते-लिखते मरा, मृत्यु समय में वह ८० वर्ष से भी अधिक उम्र का था। टामस्कार जब ८६ वर्ष के थे तो उन्होंने हिब्रू भाषा का पढ़ना शुरू किया। ७० वर्ष की उम्र में गलीलियो ने एक वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखा। जेम्सवाट ने ८५ वर्ष की आयु में जर्मन भाषा पढ़ी। हम्बाल्ट ने अपना ग्रन्थ 'कास्मास' ९० वर्ष की उम्र में पूरा किया। एलिविट उस समय पाठशाला में भर्ती हुआ जब उसकी दाढ़ी मूंछें निकल आई थीं, आखिर उसने 'ग्रेजुएट' की उपाधि प्राप्त कर ही ली। महाकवि लागफेलो, टेनीसन, ह्वीटियर आदि ने अपनी उत्तम पुस्तकें ७० वर्ष बाद पूरी कीं। ८० वर्ष की उम्र में ग्लेडस्टन, वेलिंगटन और विस्मार्क इतना काम करते थे, जितना २५ वर्ष का नौजवान मुश्किल से कर सकता है।

उत्साह एक अग्नि है, जो हमारे कार्यों को चलाने के लिये भाप तैयार करती है। यदि लोग समझलें कि हममें कितनी शक्ति है और उस शक्ति का उत्साहपूर्वक उपयोग करें तो गजब के काम करके दिखा सकते हैं, परन्तु अड़ियल घोड़े के स्वभाव के मनुष्य अपनी शक्ति को निराशा और निरुत्साह पर बलिदान करते रहते हैं।

कथा—

गरीब की हाय ।

(श्री मंगलचंद भण्डारी "मंगल" अजमेर)

एक राजा ने किसी विद्वान से पूछा कि "दुष्ट लोग जल्दी क्यों मर जाते हैं ? और सज्जन पुरुष चिरकाल तक क्यों जीवित रहते हैं" ? विद्वान इसका उत्तर तो अच्छी तरह जानता था, लेकिन फिर भी उसने उत्तर राजा को उस समय न बतला कर तीन माह की अवधि माँगी ! राजा ने तीन माह की अवधि दे दी ।

बड़ी उत्सुकता और प्रतीक्षा के बाद तीन माह पूरे हुये । सारी प्रजा भी इस विचित्र प्रश्न का उत्तर सुनने को उत्सुक थी ! भारी भीड़ लगी थी ! नियत समय पर विद्वान भी उपस्थित हुआ । वहाँ आकर उसने एक लम्बी सांस ली, बड़े दुःख के साथ कहा श्रीमान ! मैं आप के इस प्रश्न का उत्तर किसी जंगल में दूंगा ! अतः आपको ५०० सैनिक साथ ले चलना होगा ? राजा तो प्रश्न का उत्तर चाहता था, इस लिये विद्वान के कथानुसार बाहर जाने की भी तैयारी प्रारम्भ कर दी ।

राजा ने बाहर जाने के लिये विशेष रूप से प्रबन्ध किया । ५०० सिपाहियों को शस्त्र सहित तैयार होने की आज्ञा दे दी । मन्त्री को खास तौर से हिदायत करदी की जब तक लौट कर मैं वापिस न आऊँ, तब तक राज कार्य बड़ी सावधानी से चलाना ! प्रजा की भलाई का सदैव खयाल रखना प्रजा को तकलीफ न हो ! आदि प्रजा के हित की अनेक बातें समझा बुझा कर राजा ने प्रस्थान किया ।

सारे दिन चलते चलते एक घने जंगल में पहुँचे, जहाँ आदमी का नाम निशान तक न था । पक्षियों की बोली भी कम ही सुनाई पड़ती थी ! ऐसी जगह पहुँच कर विद्वान् ने राजा से कहा—श्रीमान्—यहीं पर ठहरना ठीक होगा ! राजा ने सैनिकों को वहीं ठहरने की आज्ञा दी सैनिक लोग वहीं ठहर गये । कुछ ही देर में ५०० सैनिकों की सहायता से वहाँ पर तम्बू बँध गये ! भोजन करने के पश्चात् दिन भर के थके सैनिक विश्राम करने लगे ! सोते ही सब को नींद आ गई ।

सबेरे नित्य कर्म से निवृत्त हो सबने फिर भोजन किया और पश्चात महाराज के आदेश की प्रतीक्षा करने लगे । विद्वान से बड़ी गम्भीरता पूर्वक दुःख प्रकट करते हुए कहा श्रीमान् ! मैंने सोचा था कि बाहर आकर मैं आपके प्रश्न का उत्तर सुगमता पूर्वक दे सकूँगा, लेकिन यहाँ पर फिर एक विघ्न उपस्थित हो गया है ? यह सामने वाला बरगद का पेड़ इस विघ्न का खास कारण है ! अतः यह पेड़ जब तक जड़-सहित अपने आप न गिर जाय तब तक मैं अपना उत्तर नहीं बता सकता ! इसलिये अच्छा हो आप अपने ५०० सैनिकों को उस बरगद की देख रेख में तैनात कर दें !

राजा की पहले तो ऐसा करने के लिये इच्छा न हुई, लेकिन फिर कुछ सोचनेके पश्चात् उन्होंने इस कठिन कार्य्य को भी करना मंजूर कर लिया ! राजाने जब यहप्रस्ताव मंजूर कर लिया तब विद्वान ने कहा—महाराज सैनिकों को तैनात करने के पूर्व उनसे आप यह भी सख्ती कर दीजिये कि जब तक वह पेड़ न सूख जाय तब तक कोई भी वहाँ से न हटे ! और एक बात की हिदायत यह भी कर दीजिये कि कोई सैनिक भूल कर भी उस पेड़ को नष्ट करने के लिये, उस पर शस्त्र का प्रयोग न करे ! महाराज ने विद्वान के कथनानुसार सब करवा दिया ! ५०० सैनिक उस पेड़ की देख रेख में लग गये ! महाराज स्वयम् भी उस पेड़ के सूखने की राह देखने लगे ।

एक दो दिन तो जैसे तैसे बीत गये ! लेकिन फिर सैनिकों का हाल बुरा हो गया ! ज्येष्ट को लू से सब घबरा गये ! पीने को पानी भी बड़ी कठिनता से प्राप्त होता था ! सारे दिन धूप में चने की भाँति सिक

जाते थे। ५०० जवान केवल घबरा ही न गये थे, बल्कि बड़े व्याकुल हो गये थे ! लेकिन करते क्या ?

हाय ! यह पेड़ कब सूखेगा ? कब हम अपने घर जाकर अपने बाल बच्चों को संभालेंगे ? बस सोते, जागते, खाते, पीते, उठते, बैठते, बोलते उनके मुँह से यही हाय ! के शब्द निकलते थे ! इस तरह ५०० जवान उस पेड़ के लिये हृदय से दुखी थे।

किसे विश्वास था कि यह सैकड़ों वर्षों में गिरने वाला पेड़ जल्दी ही सूख कर गिर जायगा, लेकिन यह क्या ? तीन मास भी न हुए और पेड़ के तमाम पत्ते एक-एक करके झड़ गये ! अब था तो सिर्फ पत्तों रहित पेड़। सब को कुछ आशा बंधी ! पूरे ६ माह भी समाप्त न हुए कि वह पेड़ जड़ सहित जमीन पर गिर गया !

सब की खुशी का पार न रहा ! घर जाने के लिये कई दिनों से लालियत सिपाहियों की इच्छा पूर्ण हुई। खुशी के मारे उछलते कूदते एक सिपाही ने यह सन्देश राजा को भी सुना दिया कि—श्रीमान् बरगद का पेड़ अपने आप जड़ सहित गिर पड़ा है ? राजा और विद्वान बड़ी उत्सुकता पूर्वक देखने आये ! यह सब देख कर विद्वान से सैनिकों से पूछा—तुमने इस हजारों वर्ष में नष्ट होने वाले पेड़ को कैसे गिरा दिया है ? क्या तुमने किसी शस्त्र की सहायता से ऐसा किया है। वे सब डरते २ बोले, महाराज यह तो अपने आप ही गिर पड़ा है ! हमने कोई शस्त्र का प्रयोग नहीं किया है। हाँ ! हमने सोते जागते इतनी विनती प्रभु से अवश्य की है कि "हाय ! यह पेड़ कब सूखे ? और कब हम अपने घर जाँय ?

तब विद्वान ने कहा राजन् ! जिस प्रकार यह हजारों वर्ष में नष्ट होने वाला पेड़ ५०० जवानों की 'हाय' खाकर अपने आप ही जड़ सहित गिर पड़ा है, उसी तरह आदमी भी अनेकों की हाय खाकर अपने आप ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं ! राजा ने कभी भी इस प्रश्न पर विचार न किया था कि "हाय क्या है ?" आज यह अच्छी तरह समझ गया कि हाय से कौन सी चीज़ नाश को प्राप्त नहीं हो सकती !

अपरोक्ष आवाहन।

(परलोक विद्या के आचार्य श्री० वी० डी० ऋषि)

(जून के अंक से आगे)

प्रेतात्माओं को आवाहन करने के इन प्रयोगों में जो सन्देश आते हैं वे अतीव विचारणीय रहते हैं, किन्तु स्नेह बन्धन के अभाव से वह तुलनात्मक दृष्टि से स्वल्प होते हैं, उसी मुताबिक ऐसे अवसर पर भिन्न-भिन्न सम्बन्धियों के नाम प्राप्त करने से कठिनाई प्रतीत होती है। आनुषंगिक प्रमाणों से तथा सन्देश में लिखी हुई बातों से विवक्षित व्यक्ति का आगमन निश्चित किया जा सकता है।

यह प्रयोग करने के लिये विशिष्ट शक्तियुक्त माध्यम की तथा परलोकस्थ मार्ग दर्शक के साहाय्य की आवश्यकता रहती है। साधारणतः यह देखा गया है कि कई लोग अपने प्रिय स्वर्गीय सम्बन्धियों से संवाद करने में सफल होते हैं, किन्तु अन्य जिज्ञासुओं को उनके उपस्थिति में भी साहाय्य नहीं कर सकते वे अप्रत्यक्ष आवाहन के प्रयोग करने में असमर्थ होंगे। उनकी माध्यमिक शक्ति उतने अंश तक विकसित नहीं रहती, इसलिये उनके प्रयोगों में उचित अनुभव नहीं आ सकते।

शास्त्रीय दृष्टि से इन प्रयोगों का महत्व बहुत ही विचारणीय है, स्वयं लेखन अथवा औजाबोर्ड द्वारा जो संदेश प्राप्त होते हैं उनके संबंध में अनभिज्ञ लोग गुप्तमन अथवा विचार संक्रमण के आक्षेप व्यक्त करते हैं, किन्तु अपरोक्ष आवाहन के प्रयोगों से वह आक्षेप निर्मूल रहते हैं, कारण प्रयोगकर्ताओं को उस व्यक्ति के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है। ऐसी अवस्था में अज्ञात अवस्थायें भिन्न-भिन्न व्यक्ति से भिन्न-भिन्न प्रकार के संदेश केवल नाम मात्र से प्राप्त होना निस्संदेह आश्चर्योत्पादक है।

स्वप्नदोष का यौगिक उपचार

(पं० शिवनारायण शर्मा H. M. पाठशाला, माईथान-आगरा)

अश्विनी मुद्रा और उसका फल

आकुञ्चयेद् गुदद्वारं प्रकाशयेत् पुनः पुनः।
सा भवेदश्विनी मुद्रा शक्ति प्रबोधकारिणी॥
(उप० ३ श्लोक ८२ घे० सं०)

अर्थ--बार-बार गुह्य द्वार का आकुञ्चन प्रसारण करने को अश्विनी मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा शक्ति प्रबोधकारिणी कही जाती है।

अश्विनी परमामुद्रा गुह्यरोग विनाशिनी।
बल पुष्टि करी चैव अकाल मरणं हरेत्॥
(घे० सं० ३।८३)

अर्थ—इस सर्वोत्कृष्ट अश्विनी मुद्रा साधन के प्रभाव से गुह्यरोग नष्ट होते हैं। यह बल और पुष्टि साधन करने वाली है और इसके प्रसाद से अकाल मृत्यु नहीं होती।

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।
तस्मादति प्रयत्नेन कुरुते बिन्दुधारणम्॥
(शिव संहिता ४ ८८)

शक्तिचालन मुद्रा और उसका फल

मूलाधार पद्म में कुण्डलिनी शक्ति दृढ़रूप से स्वयम्भूलिङ्ग से ३॥ लपेट लगाये सोती है, धीमान् योगी अपान वायु के सहयोग से शक्तिपूर्वक इस कुण्डलिनी देवी को आकर्षण करके ऊपर को चलावें, इसको शक्तिचालन मुद्रा कहते हैं। इसके द्वारा शक्ति प्राप्त होती है। (शिव सं० ३।१०५) जो योगी (साधक) प्रतिदिन इसका अभ्यास करेंगे, उनके शरीर में धातु सम्बन्धी रोग न होगा और परमायु बढ़ेगी। (३।१०६) सिद्धासन पर बैठकर दो घड़ी रोज अभ्यास करे। इस विषय में अधिक जानना हो तो घेरंड संहिता और शिव-संहिता देखिये।

पशुओं से शिक्षा

(१) अश्विनी मुद्रा क्या? अश्विनी का अर्थ है घोड़ी। घोड़ी जब पेशाब कर चुकती है, तब अपनी योनि का आकुञ्चन प्रसारण करती है। उसी प्रकार साधक अपने गुह्यद्वार का आकुञ्चन प्रसारण साधन करे।

(२) पेशाब करने का साधन—भैंसा जिस प्रकार रुक-रुक कर पेशाब करता है, उस तरह रुक-रुक कर पेशाब करे। दो सैकण्ड पेशाब किया, १॥ सैकण्ड रुक गये। फिर किया, फिर रोका; इससे दुर्बल नसों में शक्ति आती है। (विजयकृष्ण गोस्वामी)

(३) आप ध्यान देकर विचार कीजिये कि कोई पशु दस्त और पेशाब साथ-साथ नहीं करता। यदि साथ २ करे तो वह रोगी समझा जाता है, परन्तु मनुष्य प्रायः ऐसा ही करते हैं। जो साधन मनुष्यों को सीखने से आते हैं, पशुओं में प्राकृतिक हैं। इसी प्रकार धातुदौर्बल्य वाला मनुष्य यदि शौच जाने से ४।६ मिनट पहले पेशाब करके पीछे शौच जाया करे तो उसका स्वप्नदोष, धातुदौर्बल्य दूर हो।
(एक रमते राम)

(४) यदि किसी की समझ में यह बातें स्पष्ट न आवें तो वह अपने धातु-रोग की उत्पत्ति का कारण, कितने दिन से है, क्या २ उपचार कर चुके हैं, क्या दशा है इत्यादि पूर्ण विवरण और उत्तर के लिये टिकट भेज कर सम्मति ले सकते हैं। उनका पत्र गुप्त रक्खा जायगा सङ्कोचवश ये बीमारियाँ जड़ पकड़ जाती हैं

(५) श्री मद्भगवद्गीता या देवी माहात्म्य के किसी श्लोक की यौगिक आध्यात्मिक व्याख्या जाननी हो तो पत्र-व्यवहार कीजिये। उत्तर के लिये टिकट न आने से क्षमा प्रार्थी हूँ।

पाठकों का पृष्ठ

गत मास ऐसी विज्ञप्ति प्रकाशित की गई थी कि " अखण्ड ज्योति में शिक्षाप्रद कथाऐं और महापुरुषों के दिव्य वचन विशेष रूप से रहा करेंगे और आध्यात्मिक साधनाओं की शिक्षा पुस्तकों द्वारा दी जाया करेगी।" इस परिवर्तन का कारण यह था कि सर्व साधारण की रुचि के साथ आध्यात्मिक तत्वों को मिला देने से हमारा उद्देश्य भी पूरा होता रहेगा और पत्रिका का प्रचार भी पर्याप्त होगा। देखा जाता है कि जिस अङ्क में कथाऐं अधिक रहती हैं, उसकी माँग बहुत बढ़ जाती है। गम्भीर आध्यात्मिक लेखों के प्रेमी कम हैं। जो हैं वे अपने प्रिय विषय की उन्नति के सम्बन्ध में बड़े उदासीन रहते हैं। ऐसी दशा में पत्रिका उन्नति नहीं कर पाती और महँगाई से युग का घाटा उसे सताता रहता है।

इस मास पाठकों के ३८७ पत्र ऐसे आये हैं, जिनमें गम्भीर आध्यात्मिक लेखों का समावेश रखने पर बहुत जोर दिया गया है। यह संख्या यद्यपि हमारे कथा प्रेमियों के दसवें भाग से भी कम है, तो भी उनकी भावनाओं का आदर किया जायगा। घाटे का भार ईश्वर पर छोड़ते हुए आध्यात्मिक विषय के उत्तमोत्तम लेख जुटाने का पूरा पूरा प्रयत्न करेंगे। साथ ही थोड़ी बहुत कथाएँ भी देते रहेंगे। आशा है कि इससे प्रेमी पाठकों को संतोष होगा।

—सम्पादक।

× × ×

सूर्य चिकित्सा और प्राण चिकित्सा पद्धतियो के अनुसार मैंने एक चिकित्सालय खोल दिया है। मुफ्त इलाज करता हूँ। लोगों को बहुत फायदा हो रहा है। साथ ही आध्यात्मिक शिक्षाओं का केन्द्र भी स्थापित किया है। प्रतिदिन चालीस पचास पीड़ितों की सेवा करके मुझे आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता है। ईश्वर की कृपा से अनायास ही खर्च के लायक आमदनी हो जाती है।

—भीखचन्द जैसवाल, बीकानेर।

× × ×

गत वर्ष आपकी हस्तलिखित पुस्तक 'बुद्धि बढ़ाने के उपाय' में से जो विधियाँ नोट करके लाया था, उनके प्रयोग से बड़े आश्चर्यजनक लाभ हुए हैं। हमारे स्कूल में १० लड़के ऐसे थे, जिनके पास होने की स्वप्न में भी उम्मेद न थी, पर उनमें से ६ दूसरी और तीसरी श्रेणी में पास हो गये। मेरी स्मरण शक्ति बहुत बढ़ी है। मुझे आपसे यह बहुत शिकायत है कि ऐसी उपयोगी पुस्तक को अभी तक नहीं छपा रहे हैं। चाहिए तो यह था, पहले उसे छापते पीछे दूसरी। आशा है आप उस अद्भुत पुस्तक को छापने में अब विलम्ब न करेंगे।

—सुरेन्द्रदत्त भट्ट हैड मास्टर, सिमरई।

× × ×

'स्वस्थ और सुन्दर बनने की विद्या' के साधनों को काम में ला रहा हूँ। पुरानी खाँसी कम हो रही है। शरीर में फुर्ती और मन में प्रसन्नता है।

—ज्योतीप्रसाद सक्सेना, फरीदपुर।

× × ×

मैस्मरेजम सीखने की मुद्दतों से इच्छा थी। कई बार ठगा गया हूँ और दर्जनों पुस्तकें खरीद चुका हूँ। पर किसी से मनोकामना पूर्ण न हुई थी। आपकी (१) परकाया प्रवेश, (२) प्राण चिकित्सा, (३) मानवीय विद्युत के चमत्कार को पढ़कर मुझे इतनी ठोस सामिग्री प्राप्त हुई, जितनी गत पांच वर्षों में बहुत प्रयत्न करने के बाद भी न पा सका था। पात्र को निद्रित करने के अभ्यास में पूरी सफलता मिली है।

—गोकुलप्रसाद सूद, जलालपुर।